

गायत्री के पाँच मुख पाँच दिव्य कोश



गायत्री के पाँच मुख पाँच दिव्य कोश

✽

लेखक

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ—पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

✽

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स नं०- २५३०२००

२०१०

मूल्य : २२.०० रुपये

विषय सूची

१. गायत्री के पाँच मुख, पाँच दिव्य कोश	३
२. अन्नमय कोश का परिष्कार और प्रतिफल	१८
३. मनोमय कोश का विकास-परिष्कार	३२
४. प्राणमय कोश में निहित प्रचंड जीवनी शक्ति	५१
५. सूक्ष्म सिद्धियों का केंद्र—विज्ञानमय कोश	६८
६. आनंदमय कोश—समाधि, स्वर्ग और मुक्ति का द्वार	८८
७. पाँच कोशों की साधना—पंचमुखी गायत्री की सिद्धि	१०३

मुद्रक

युग निर्माण योजना प्रेस,

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

गायत्री के पाँच मुख—पाँच दिव्य कोश

गायत्री के पंचमुखी चित्रों एवं पंचमुखी प्रतिमाओं का प्रचलन इसी प्रयोजन के लिए है कि इस महामंत्र की साधना का अवलंबन करने वालों को यह विदित रहे कि हमें आगे चलकर क्या करना है ? जप, ध्यान, स्रोत, पाठ-पूजन, हवन, ये आरंभिक क्रिया-कृत्य हैं। इनसे शरीर की शुद्धि और मन की एकाग्रता का प्रारंभिक प्रयोजन पूरा होता है। इससे अगली मंजिलें कड़ी हैं। उनकी पूर्ति के लिए साधक को जानकारी प्राप्त करनी चाहिए और उस मार्ग पर चलने के लिए आवश्यक तत्परता, दृढ़ता एवं क्षमता का संपादन करना चाहिए। इतना स्मरण यदि साधक रख सका, तो समझना चाहिए कि उसने गायत्री पंचमुखी चित्रण का प्रयोजन ठीक तरह से समझ लिया।

वस्तुतः गायत्री परमब्रह्म परमात्मा की विश्वव्यापी महाशक्ति है। उसका कोई स्वरूप नहीं। यदि स्वरूप का आभास पाना हो, तो वह प्रकाश रूप में हो सकता है। ज्ञान की उपमा प्रकाश से दी जाती है, गायत्री का देवता सविता है। सविता का अर्थ है सूर्य—प्रकाश पुंज। जब गायत्री महाशक्ति का अवतरण साधक में होता है, तो साधक को ध्यान के समय प्रकाश बिंदु एवं वृत्त का आभास मिलता है। उसे अपने हृदय सिर, नाभि अथवा आँखों में छोटा या बड़ा प्रकाश पिंड दिखाई पड़ता है। वह कभी घटता, कभी बढ़ता है। इसमें कई तरह की कई आकृतियाँ भी, कई रंगों की प्रकाश किरणें दृष्टिगोचर होती हैं। ये आरंभ में हिलती-डुलती रहती हैं, कभी प्रकट कभी लुप्त होती हैं, पर धीरे-धीरे वह स्थिति आ जाती है कि विभिन्न आकृतियाँ, हलचलें एवं रंगों का निराकरण हो जाता है और केवल प्रकाश बिंदु ही शेष रह जाता है। प्राथमिक स्थिति में यह प्रकाश छोटे आकार का एवं स्वल्प तेज का होता है, किंतु जैसे-जैसे आत्मिक प्रगति ऊर्ध्वगामी होती है वैसे-वैसे प्रकाश

वृत्त बड़े आकार का, अधिक प्रकाश का, अधिक उल्लास भरा दिखता है। जैसे प्रातःकाल के उगते हुए सूर्य की गर्मी पाकर कमल की कलियाँ खिल पड़ती हैं, वैसे ही अंतरात्मा इस प्रकाश-अनुभूति को देखकर ब्रह्मानंद का, परमानंद का, सच्चिदानंद का अनुभव करता है। जिस प्रकार चकोर रात भर चंद्रमा को देखता रहता है वैसे ही साधक की इच्छा होती है कि वह इस प्रकाश को ही देखकर आनंद विभोर होता रहे। कई बार ऐसी भावना भी उठती है कि जिस प्रकार दीपक पर पतंगा अपना प्राण होम देता है, अपनी तुच्छ सत्ता को प्रकाश की महत्ता में विलीन होने का उपक्रम करता है, वैसे ही मैं भी अपने अहम् को इस प्रकाश रूप ब्रह्म में लीन कर दूँ।

यह निराकार ब्रह्म के ध्यान की थोड़ी झँकी हुई। अनुभूति की दृष्टि से साधक को ऐसा भान होता है, मानो उसे ब्रह्म-ज्ञान की, तत्त्वदर्शन की अनुभूति हो रही हो, ज्ञान के सारांश का जो निष्कर्ष है, उत्कृष्ट आदर्शवादी क्रिया-कलाप से जीवन को ओत-प्रोत कर लेना, वही आकांक्षा एवं प्रेरणा मेरे भीतर जाग रही है। जागरण ही नहीं, वरन् संकल्प के निश्चय का, अवस्था का, तथ्य का रूप धारण कर रही है। प्रकाश की अनुभूति का यही चिह्न है। माया-मोह और स्वार्थ-संकीर्णता का अज्ञान तिरोहित होने से मनुष्य विशाल दृष्टिकोण से सोचता है और महान् आत्माओं जैसी साहसपूर्ण गतिविधियाँ अपनाता है, उसे लोभी और स्वार्थी, मोहग्रस्त, मायाबद्ध लोगों की तरह परमार्थ पथ में साहसपूर्ण कदम बढ़ाते हुए न तो झिझक लगती है और न संकोच होता है। जो उचित है उसे करने के लिए, अपनाने के लिए निर्भीकतापूर्वक साहस भरे कदम उठाता हुआ श्रेय पथ पर अग्रसर होने के लिए द्रुतगति से बढ़ चलता है।

यह तो गायत्री रूपी परमब्रह्म सत्ता के उच्चस्तरीय ज्ञान एवं ध्यान का स्वरूप हुआ। प्रारंभिक स्थिति में ऐसी उच्चस्तरीय अनुभूतियाँ संभव नहीं उस दशा में प्रारंभिक क्रम ही चलाना पड़ता है। जप, पूजन, ध्यान, स्तवन, हवन जैसे शरीर साध्य क्रिया-कलाप ही प्रयोग में आते हैं। तब चित्र या प्रतिमा का अवलंबन ग्रहण किये

बिना काम नहीं चल सकता। प्रारंभिक उपासना, साकार माध्यम से ही संभव है। निराकार का स्तर काफी ऊँचे उठ जाने पर आता है। उस स्थिति में भी प्रतिमा का विरोध या परित्याग करने की आवश्यकता नहीं पड़ती, वरन् उसे नित्य कर्म में सम्मिलित रखकर संचित संस्कार को बनाए रखना पड़ता है। इमारत की नींव में कंकड़-पत्थर भरे जाते हैं। नींव जम जाने पर तरह-तरह की डिजायनों की इमारतें उस पर खड़ी होती हैं। नींव में पड़े हुए कंकड़-पत्थर दृष्टि से ओझल हो जाते हैं—फिर भी उनका उपहास उड़ाने, परित्याग करने या निकाल फेंकने की आवश्यकता नहीं पड़ती। वरन् यह मानना पड़ता है कि उस विशाल एवं बहुमूल्य इमारत का आधार, वे नींव में भरे हुए कंकड़-पत्थर ही हैं। साकार उपासना की आध्यात्मिक प्रगति को भी नींव भरना कहा जा सकता है। आरंभिक स्थिति में उसकी अनिवार्य आवश्यकता ही मानी गई है। अस्तु, अध्यात्म का आरंभ चिर अतीत से प्रतिमा पूजन के सहारे हुआ है और क्रमशः आगे बढ़ता चला गया है। गायत्री महाशक्ति की आकृति का निर्धारण भी इसी संदर्भ में हुआ है। अन्य देव प्रतिमाओं की तरह उसका विग्रह भी आदिकाल से ही ध्यान एवं पूजन में प्रयुक्त होता रहा है।

सामान्यतया एक मुख और दो भुजा वाली मानव आकृति की प्रतिमा ही अधिक उपयुक्त है। पूजन और ध्यान उसी का ठीक बनता है। संगी माता मानने के लिए गायत्री को भी वैसे ही हाथ-पैर वाली होना चाहिए जैसा कि साधक का होता है। इसलिए ध्यान एवं पूजन में सदा से दो भुजाओं वाली और एक मुख वाली पुस्तक एवं कमंडल धारण करने वाली हंसवाहिनी गायत्री माता का प्रयोग होता रहा है। किंतु कतिपय स्थानों में पंचमुखी प्रतिमा एवं चित्र भी देखे जाते हैं। इनका ध्यान-पूजन भले ही उपयुक्त न हो, पर उसमें एक महत्त्वपूर्ण शिक्षण, संदेश एवं निर्देश अवश्य ही भरा हुआ है। हमें उसी को देखना-समझना चाहिए।

गायत्री के पाँच मुख, जीव के ऊपर लिपटे हुए पंच-कोश—पाँच आवरण हैं और दस भुजाएँ, दस सिद्धियाँ एवं

अनुभूतियाँ हैं। पाँच भुजाएँ बाईं ओर पाँच दाहिनी ओर हैं। उसका संकेत गायत्री महाशक्ति के साथ जुड़ी हुई पाँच भौतिक और पाँच आध्यात्मिक शक्तियों एवं सिद्धियों की ओर है। इस महाशक्ति का अवतरण जहाँ भी होगा, वहाँ वे दस अनुभूतियाँ—विशेषताएँ—संपदाएँ निश्चित रूप से परिलक्षित होंगी। साधना का अर्थ एक नियत पूजा स्थान पर बैठकर अमुक क्रिया-कलाप पूरा कर लेना मात्र ही नहीं है, वरन् समस्त जीवन को साधनामय बनाकर अपने गुण, कर्म, स्वभाव को इतने उत्कृष्ट स्तर का बनाना है कि उसमें वे विभूतियाँ प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होने लगें, जिनका संकेत पंचमुखी माता की प्रतिमा की प्रतीक से है। साधना का उद्देश्य शक्ति प्राप्त करना है। दस शक्तियाँ दस सिद्धियाँ जीवन साधना के द्वारा जब प्राप्त की जाने लगें, तो समझना चाहिए कि कोई गायत्री उपासक उच्चस्तरीय साधन-पथ पर सफलतापूर्वक अग्रसर हो रहा है।

गायत्री के पाँच मुख हमें बताते हैं कि जीव सत्ता के साथ पाँच सशक्त देवता, उसके लक्ष्य प्रयोजनों को पूर्ण करने के लिए मिले हुए हैं। ये निद्राग्रस्त हो जाने के कारण मृततुल्य पड़े रहते हैं और किसी काम नहीं आते। फलतः जीव दीन-दुर्बल बना रहता है। यदि इन सशक्त सहायकों को जगाया जा सके, उनकी सामर्थ्य का उपयोग किया जा सके, तो मनुष्य सामान्य न रहकर असामान्य बनेगा। दुर्दशाग्रस्त स्थिति से उबरने और अपने महान् गौरव के अनुरूप जीवनयापन का अवसर मिलेगा। शरीरगत पाँच तत्त्वों का उल्लेख पाँच देवताओं के रूप में इस प्रकार किया गया है—

“आकाशस्याधिपो विष्णुरग्नेश्चैव महेश्वरः।

वायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य मणाधिपः।।”

—कपिलतंत्र

आकाश के अधिपति हैं विष्णु। अग्नि की अधिपति महेश्वरी शक्ति है। वायु के अधिपति सूर्य हैं। पृथ्वी के स्वामी शिव हैं और जल के अधिपति गणपति गणेश जी हैं। इस प्रकार पंच देव शरीर के पंचतत्त्वों की ही अधिपति—सत्ताएँ हैं।

पाँच प्राणों को भी पाँच देव बताया गया है।

पंचदेव मय जीवः पंच प्राणमयं शिवः।

कुंडली शक्ति संयुक्तं, शुभ्र विद्युल्लतोपमम्॥

—तंत्रार्णव

ये जीव पाँच देव सहित हैं। प्राणवान् होने पर शिव हैं। यह परिकर कुंडलिनी शक्ति युक्त हैं। इनका आकार चमकती बिजली के समान है।

कुंडलिनी जागरण का परिचय पंच कोशों की जाग्रति के रूप में मिलता है।

कुंडलिनी शक्तिराविर्भवति साधके।

तदा स पंच कोशेषु मत्तेजोऽनुभवति ध्रुवम्॥

—महायोग विज्ञान

जब कुंडलिनी जाग्रति होती है, तो साधक के पाँचों कोश ज्योतिर्मय हो उठते हैं।

पाँच तत्त्वों से शरीर बना है। उनके सत्त्व गुण चेतना के पाँच उभारों के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। (१) मन माइंड (२) बुद्धि इंटिलेक्ट (३) इच्छा विल (४) चित्त माइंड स्टफ (५) अहंकार ईगो।

पाँच तत्त्वों (फाइव ऐलीमेंट्स) के राजस तत्त्व से पाँच प्राण (बाइटल फोर्सज) उत्पन्न होती हैं। पाँच ज्ञानेंद्रियाँ उन्हीं के आधार पर अपने विषयों का उत्तरदायित्व निवाहती हैं।

तत्त्वों के तमस् भाग से कायकलेवर का निर्माण हुआ है। (१) रस (२) रक्त (३) मांस (४) अस्थि (५) मज्जा के रूप में उन्हें क्रिया निरत काया में देखा जा सकता है। मस्तिष्क, हृदय, आमाशय, फुफ्फुस और गुर्दे, ये पाँचों विशिष्ट अवयव तथा पाँच कर्मेंद्रियों को उसी क्षेत्र का उत्पादन कह सकते हैं।

जीव सत्ता के सहयोग के लिए मिले पाँच देवताओं को पाँच कोश कहा जाता है। यों दिखने में शरीर एक ही दिखाई पड़ता है, फिर भी उनकी सामर्थ्य क्रमशः एक से एक बढ़ी-चढ़ी है। न दिखते

हुए भी वे इतने शक्तिसंपन्न हैं कि उनकी क्षमताओं को जगाया जा सकना संभव हो सके, तो मनुष्य तुच्छ से महान् और आत्मा से परमात्मा बन सकता है। जीवात्मा पर चढ़े हुए इन पाँच आवरणों, पाँच कोशों के नाम हैं (१) अन्नमय कोश (२) प्राणमय कोश (३) मनोमय कोश (४) विज्ञानमय कोश (५) आनंदमय कोश।

तैत्तिरीय उपनिषद् में अन्नमय के भीतर प्राणमय का, प्राणमय के भीतर मनोमय का, मनोमय के भीतर विज्ञानमय का और विज्ञानमय के भीतर आनंदमय कोश का वर्णन है। इनमें बहुत कुछ साम्य और बहुत कुछ अंतर है। इसकी चर्चा इस प्रकार हुई है।

‘स वा एष पुरुषोऽन्नरसमयः। तस्येदमेव शिरः। अयं दक्षिणः पक्षः। अयमुत्तरः पक्षः। अयमात्मा। इदं पुच्छं प्रतिष्ठा।’

—तै० उ० २।१।१

मनुष्य, अन्न रसमय है। यही उसका सिर है। यही उसका दक्षिण पक्ष है। यही उसका उत्तर पक्ष है। यह आत्मा है। यह पुच्छ तंत्र मेरुदंड पर प्रतिष्ठित है।

‘तस्माद्वा एतस्मादन्नरसमयादन्योऽन्तर आत्मा प्राणमयः। तेनैष पूर्णः। स वा एष पुरुषविध एव। तस्य पुरुषविधतामन्वयं पुरुषविधः। तस्य प्राण एव शिरः। व्यानो दक्षिणः पक्षः। अपान उत्तरः पक्षः। आकाश आत्मा। पृथिवी पुच्छं प्रतिष्ठा।’

—तै० उ० २।२।१

उपरोक्त अन्न, रस आदि धातुओं से विनिर्मित अन्नमय कोश से पृथक् किंतु भीतर रहने वाला आत्मा प्राणमय है। वह इतने में ही पूर्ण है। वह भी वैसी ही आकृति का है। वैसी ही उसकी गतिविधि है। उस प्राणमय कोश का प्राण ही सिर है। उसका व्यान दक्षिण पक्ष और अपान उत्तर पक्ष है। आकाश उसकी आत्मा है। पृथ्वी में उसकी पुच्छ प्रतिष्ठा है।

तस्माद्वा एतस्मात् प्राणमयादन्योऽन्तर आत्मा मनोमयः। तेनैष पूर्णः। स वा एष पुरुषविध एव। तस्य पुरुषविधतामन्वयं

पुरुषविधः। तस्य यजुरेव शिरः। ऋग्दक्षिणः पक्षः। सामोत्तरः पक्षः। आदेश आत्मा।
—तै० उ० २।३।१९

इस प्राणमय कोश से भिन्न मनोमय कोश है। प्राणमय कोश, मनोमय कोश से भरपूर है। वह उसी के समान है, जैसा प्राणमय कोश है वैसा ही मनोमय कोश है। यजु उसका सिर है। ऋग् दक्षिण पक्ष और साम उत्तर पक्ष है। आदेश उसकी आत्मा है।

वेदों को यहाँ मनोमय कोश के साथ क्यों जोड़ा गया इसका समाधान शंकर भाष्य में संकल्प मंथन और भाव को यजु, ऋक्, साम के रूप में किया है।

‘तस्माद्वा एतस्मान्मनोमयादन्योऽन्तर आत्मा विज्ञानमयः। तेनैष पूर्णः। स वा एष पुरुषविध एव। तस्य पुरुषविधतामन्वयं पुरुषविधः। तस्य श्रद्धैव शिरः। ऋतं दक्षिणः पक्षः। सत्यमुत्तरः पक्षः। योग आत्मा। महः पुच्छं प्रतिष्ठा।’

—तै० उ० २।४।१९

मनोमय कोश से अलग विज्ञानमय कोश है। मनोमय कोश विज्ञानमय कोश से आच्छादित है। यह विज्ञानमय है, पुरुष के समान ही है। वैसा ही है जैसा मनोमय कोश। श्रद्धा ही इसका सिर है। ऋत दक्षिण पक्ष और सत्य उत्तर पक्ष है। योग उसकी आत्मा है। महत्त्व में उसकी पुच्छ प्रतिष्ठा है।

‘तस्माद्वा एतस्माद्विज्ञानमयादन्योऽन्तर आत्मानंदमयः। तेनैष पूर्णः। स वा एष पुरुषविध एव। तस्य पुरुषविधतामन्वयं पुरुषविधः। तस्य प्रियमेव शिरः। मोदो दक्षिणः पक्षः। प्रमोद उत्तरः पक्षः। आनंद आत्मा। ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा।’

—तै० उ० २।५।१९

विज्ञानमय कोश से पृथक् किंतु उसी के अभ्यंतर आनंदमय कोश है। विज्ञानमय कोश आनंदमय कोश से परिपूर्ण है। यह भी पुरुष के ही समान है। वैसा ही है जैसा विज्ञानमय कोश। प्रिय ही उसका सिर है। मोद (भीतरी आनंद) उसका दक्षिण पक्ष और प्रमोद

(बाहरी आनंद) उत्तर पक्ष है। आनंद उसकी आत्मा है। ब्रह्म में उसकी पुच्छ प्रतिष्ठा है।

‘पंचदशी’ के तृतीय प्रकरण में ३, ५, ६, ७ और ६वें श्लोकों में पाँच कोशों का विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है।

पितृभुक्तान्नजाद्वीयाज्जातोऽन्नेनैव वर्धते ।

देहः सोऽन्नमयो नात्मा प्राक् चोर्ध्वं तद्भावतः ॥

—पंचदशी ३/३

पिता के खाये अन्न से बनने वाले वीर्य द्वारा उत्पन्न काया अन्नमय कोश में स्थित है। जन्म मरण होते रहने के कारण वह काया आत्मा नहीं है। चेतन आत्मा उससे भिन्न है।

पूर्णा देहे बलं यच्छन्नक्षाणां यः प्रवर्तकः ।

वायुः प्राणमयो नासावात्मा चैतन्यवर्जनात् ॥

—पंचदशी ३/५

काया से भरा-पूरा, उसे बल देने वाला इंद्रियों का प्रेरक प्राणमय कोश है। पर यह भी देह की तरह ही अचेतन होने के कारण आत्मा नहीं है—उससे भिन्न है।

पंचकोश क्या है ? इनका परिचय देते हुए उपनिषद्कार कहते हैं।

**अन्नकार्याणां कोशानां समूहोऽन्नमयः कोश इत्युच्यते ।
प्राणादिचतुर्दशवायुभेदा अन्नमयकोशे यदा वर्तन्ते तदा
प्राणमयः कोश इत्युच्यते । एतत्कोशद्वयसंसक्त
मनआदिचतुर्दशकरणैरात्मा शब्दादिविषयसंकल्पादिन्धर्मान्यदा
करोति तदा मनोमयः कोश इत्युच्यते । एतत्कोशत्रयसंसक्तं
तद्गतविशेषज्ञो यदा भासते तदा विज्ञानमयः कोश इत्युच्यते ।
एतत्कोशचतुष्टसंसक्तं स्वकारणाज्ञाने वटकणिकायामिव वृक्षो
यदा वर्तते तदा आनंदमयकोश इत्युच्यते ॥५॥**

—सर्व सारोपनिषद्

अन्न के द्वारा उत्पन्न होने वाले कोशों के समूह, इस प्रत्यक्ष शरीर को अन्नमय कोश कहते हैं। प्राण सहित चौदह तत्त्वों का समूह प्राणमय कोश कहलाता है। इन दोनों कोशों के भीतर इंद्रियों तथा मन का समूह मनोमय कोश कहलाता है। बुद्धि और विवेक वाली भूमिका विज्ञानमय कोश की है। इन सब कलेवरों के भीतर आत्मा का स्वाभाविक स्वरूप और स्थान आनंदमय कोश कहलाता है।

इस प्रकार मानवी चेतना को पाँच भागों में विभक्त किया गया है। इस विभाजन को पाँच कोश कहा जाता है। अन्नमय कोश का अर्थ है, इंद्रिय चेतना। प्राणमय कोश अर्थात् जीवनी शक्ति। मनोमय कोश—विचार-बुद्धि। विज्ञानमय कोश—अचेतन सत्ता एवं भाव प्रवाह। आनंदमय कोश—आत्म बोध—आत्म जाग्रति।

प्राणियों का स्तर इन चेतनात्मक परतों के अनुरूप ही विकसित होता है।

गायत्री की उच्चस्तरीय साधना इन पाँच कोशों का अनावरण करने, उन्हें जाग्रत करने के लिए ही की जाती है। इस उच्चस्तरीय साधना की ओर इंगित करने के लिए गायत्री का आलंकारिक स्वरूप पाँच मुख वाला बनाया गया है। इस चित्रण में सूक्ष्म शरीर के पाँच कोशों की प्रमुख क्षमता को जाग्रत करने और इस महाविज्ञान का समुचित लाभ उठाने का संकेत है।

इन कोशों के माध्यम से व्यक्तित्व की समृद्धियों और विभूतियों से सुसज्जित कर सकने वाली दिव्य संपदाएँ उपलब्ध की जा सकती हैं चेतना क्षेत्र में कुबेर जैसा सुसंपन्न बना जा सकता है। कोश का एक अर्थ आवरण एवं पर्दा भी होता है। परतें उतारते—आवरण हटाते चलने पर वस्तु का असली स्वरूप सामने आ जाता है। पंचकोशों के जागरण से, अनावरण से कषाय-कल्मषों से वे अवरोध हटते हैं, जिनके कारण जीवात्मा को अपने ईश्वर प्रदत्त उत्तराधिकार से—वंचित रहकर, दुर्दशाग्रस्त परिस्थितियों में गुजारा करना पड़ता है।

पाँच कोशों के विभाजन को तीन के वर्गीकरण में भी प्रस्तुत किया गया है। स्थूल, सूक्ष्म और कारण—ये तीन शरीर बताये गये, हैं। उन्हें त्रिपदा गायत्री कहा जाता है। स्थूल शरीर में अन्नमय और प्राणमय कोश आते हैं। पंचतत्त्वों और पाँच प्राणों का इसमें समावेश है। सूक्ष्म शरीर में मनोमय कोश और विज्ञानमय कोश सन्निहित हैं। इन दोनों को चेतना मस्तिष्क और अचेतन मानस कह सकते हैं। कारण शरीर में आनंदमय कोश आता है। विज्ञानों ने इस विवेचन में यत्किंचित् मतभेद भी व्यक्त किया है, पर वस्तुस्थिति जहाँ-की-तहाँ रहती है।

पाँच कोशों का तत्त्वदर्शन

अन्नमय कोश का अर्थ है इंद्रिय चेतना, प्राणमय कोश अर्थात् जीवनी शक्ति, मनोमय कोश अर्थात् विचार बुद्धि, विज्ञानमय कोश अर्थात् भाव प्रवाह एवं आनंदमय कोश अर्थात् आत्मबोध के स्वरूप में स्थित। ये पाँच चेतना के स्तर हैं। निम्न स्तर के प्राणी इनमें निम्न भूमिका में पड़े रहते हैं। कृमि-कीटकों की चेतना इंद्रियों की प्रेरणा के इर्द-गिर्द अपना चिंतन सीमित रखती है। वे शरीर की जीवनी शक्ति मात्र से जीवित रहते हैं। संकल्प बल उनके जीवन-मरण में सहायक नहीं होता। मनुष्य की जिजीविषा इस शरीर को अशक्त-असमर्थ होने पर भी जीवित रख सकती है, पर निम्न वर्ग में प्राणी मात्र सर्दी-गर्मी बढ़ने जैसे ऋतु प्रभावों से प्रभावित होकर अपना प्राण त्याग देते हैं, उन्हें जीवन संघर्ष के अवरोध में पड़ने की इच्छा नहीं होती। पेट और प्रजनन मात्र के लिए जीवित रहने वाले निम्नस्तरीय प्राणी ही अन्नमय कोश तक विकसित हो पाये, यह नहीं कहा जा सकता। मनुष्यों में कितने ही इस स्तर के पाए जाते हैं। वे अपने को परिस्थितियों के प्रवाह में जिस-तिस दिशा में उड़ते रहने वाला तिनका भर मानते हैं। उनकी अंतःचेतना कोई ऊँची प्रेरणा या दिशा नहीं दे पाती वे इंद्रिय उत्तेजना से प्रेरित होकर ही विविध कर्म करते हैं। भूख लगती है, तो रोटी कमाते या खाते हैं। कामोत्तेजना से विवश होकर रति कर्म का रास्ता ढूँढ़ते हैं। सुख की परिभाषा उनके लिए स्वादिष्ट भोजन, इंद्रिय भोग, श्रम से

बचने की सुविधा आदि भी होती है। भले ही उसे चाहे जो कहा जाय।

प्राणमय कोश की क्षमता जीवनी शक्ति के रूप में प्रकट होती है। जीवित रहने की कामना सुदृढ़ इच्छाशक्ति के रूप में देखी जा सकती है। मनस्वी, ओजस्वी और तेजस्वी व्यक्तित्व ही विभिन्न क्षेत्रों में सफलताएँ प्राप्त करता है। इसके विपरीत दीन-हीन, भयभीत, शंकाशील, निराश, खिन्न, हतप्रभ व्यक्ति अपने इसी दोष के कारण उपेक्षित, तिरस्कृत एवं उपहासास्पद बने रहते हैं। उत्साह के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ी रहने वाली कर्मनिष्ठा का जहाँ अभाव होगा, वहाँ अवनति-अवगति के अतिरिक्त और कुछ रहेगा ही नहीं।

शौर्य साहस को श्रम, निष्ठा, तत्परता, तन्मयता और अदम्य उत्साह के रूप में देखा जाता है। कायर और भयभीत व्यक्तियों से कुछ करते-धरते नहीं बनता। जो करते हैं वह आधा-अधूरा, भौंडा और अव्यवस्थित होता है। जैसे पेट्रोल के अभाव में मोटर खट-खट करके रह जाती है वैसे ही जीवटहीन व्यक्ति अपने सामने पड़े कार्य को रोता-झींकता पूरा करने का कुछ प्रयत्न करता है, पर जीवट के अभाव में वह आधा-अधूरा और काना-कुबड़ा ही बनकर रह जाता है।

डाकू से लेकर सिद्ध पुरुषों तक, समाजसेवियों से लेकर राजनेताओं तक, हर किसी को अपने प्रयत्न में सफल होने के लिए जीवट की आवश्यकता पड़ती है। इसी की व्याख्या अलभ्य उत्साह, अविचल धैर्य और मर मिटने की कटिबद्ध शौर्य के रूप में देखी जाती है। प्राणमय कोश इसी शक्ति का भांडागार है। सिंह जैसे पशु और गरुड़ जैसे पक्षी यों हिंसक होने के कारण मानवी गरिमा से बहुत पिछड़े हुए हैं, तो भी उन्हें प्राणवान कह सकते हैं। शौर्य, साहस एवं पुरुषार्थ के कारण ही—वे अपने-अपने वर्ग के अधिपति बने हुए हैं। यों शरीर बल की दृष्टि से उनकी तुलना में अन्य कई प्राणी अधिक समर्थ स्थिति के भी मौजूद हैं।

मनोमय कोश का अर्थ है कि विचारशीलता—विवेक-बुद्धि। यह तत्त्व जिसमें जितना सजग होगा, उसे उसी स्तर का मनस्वी या मनोबल-संपन्न कहा जायगा। यों मन हर जीवित प्राणी का होता है। कीट-पतंग भी उससे रहित नहीं है। पर मनोमय कोश के व्याख्याकारों ने उसे दूरदर्शिता, तर्क, प्रखरता एवं विवेकशीलता के रूप में विस्तारपूर्वक समझाया है। मन की स्थिति हवा की तरह है यह दिशा विशेष तक सीमित न रहकर स्वेच्छाचारी वन्य पशु की तरह किधर भी उछलता-कूदता है; पक्षियों की तरह किसी भी दिशा में चल पड़ता है। इसे दिशा देना, चिंतन को अनुपयोगी प्रवाह में बहने से बचाकर उपयुक्त मार्ग पर सुनियोजित करना, मनस्वी होने का प्रधान चिह्न है। मनोनिग्रह-मनोजय इसी का नाम है। जंगली हाथी को पकड़कर अनुशासित बनाने का काम तो कठिन है, पर इसकी उपयोगिता अत्यधिक है। जंगली हाथी फसलें उजाड़ते और झोपड़ियाँ तोड़ते हैं और भूखे-प्यासे अनिश्चित स्थिति में भटकते हैं, किंतु पालतू बन जाने पर उनकी जीवनचर्या भी सुनिश्चित हो जाती है और साथ ही वे अपने मालिक का भी बहुत हित साधा करते हैं। सधे हुए मन की तुलना पालतू हाथी से की जा सकती है और अनियंत्रित मन को उन्मत्त जंगली हाथी कहा जा सकता है।

विज्ञानमय कोश को सामान्य भाषा में भावना प्रवाह कह सकते हैं। यह चेतना की गहराई में अवस्थित अंतःकरण से संबंधित है। विचार शक्ति से भावशक्ति कहीं गहरी है, साथ ही उसकी क्षमता एवं प्रेरणा भी अत्यधिक सशक्त है। मनुष्य विचारशील ही नहीं, संवेदनशील भी है। ये संवेदनाएँ ही उत्कट स्तर की आकांक्षाएँ उत्पन्न करती हैं और उन्हीं से प्रेरित होकर मनुष्य बेचैन विचलित हो उठता है, जबकि विचार प्रवाह मात्र मस्तिष्कीय हलचल ही पैदा कर पाता है। देव और दैत्य का वर्गीकरण इस भावचेतना के उतार-चढ़ाव को देखकर किया जाता है। आसुरी प्रकृति के व्यक्ति आत्मश्लाघा, दर्प,

आतंक-निष्ठुरता जैसी उद्धत आकांक्षाओं में डूबे रहते हैं। उन्हें अपना गौरव दूसरों पर रोब जमाने के लिए, क्रूर कर्म करने में प्रतीत होता है। ऐसे लोग यदि साहसहीन होते हैं, तो विलासी, आडंबरी, छत्री, आकर्षक एवं कपटमयी बनकर दूसरों की तुलना में अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के ताने-बाने बुनने लगते हैं। असुरता की परिभाषा इस लोभ, मोह और अहंकार के साथ जुड़े व्यक्तिगत उदंडता के रूप में की जा सकती है।

विज्ञानमय कोश की साधना मनुष्य को दयालु, उदार, सज्जन, सुहृदय, संयमी एवं शालीन बनाती है। उसे दूसरों को दुखी देखकर स्वयं को उस स्थिति में रखकर व्यथित होने की सहानुभूति का अभ्यास होता है। अपनी उपलब्धियों का उपभोग एकाकी कर सकना, उसके लिए संभव ही नहीं होता। बाँटकर खाओ उनकी सहज प्रकृति बन जाती है। जिओ और जीने दो की उदार दृष्टि उन्हें इस बात के लिए विवश करती है कि अपनी उन्नति और समृद्धि की तरह ही दूसरों को समुन्नत बनाने के लिए भी प्रयत्न किये जाएँ। अपने ऊपर खर्च होने वाले श्रम, समय, चिंतन, प्रभाव एवं धन की मात्रा उन्हें न्यूनतम स्तर तक ले जानी पड़ती है, ताकि दूसरों के लिए अधिक-से-अधिक कर गुजरने के लिए कुछ कहने लायक बचत हो सके। वासना और तृष्णा पर संयम करके सादगी भरी मितव्ययी दिनचर्या बनाना और अपनी उपलब्धियों से संसार में संब्याप्त पीड़ा एवं पतन का भार हटाना ही विज्ञानमय कोश के परिष्कार की भाव साधना है। किसका विज्ञानमय कोश किस स्तर का है ? इसका पता लगाने के लिए इसी कसौटी को सक्रिय करना पड़ता है।

आनंदमय कोश का विकास यह देखकर परखा जा सकता है कि मनुष्य क्षुब्ध, उद्विग्न, चिंतित, खिन्न, रुष्ट, असंतुष्ट रहता है अथवा हँसती-मुस्कराती, हलकी-फुलकी, सुखी-संतुष्ट जिंदगी जीता है। मोटी मान्यता यह है कि वस्तुओं, व्यक्तियों अथवा परिस्थितियों के कारण मनुष्य सुखी-दुखी रहते हैं, पर गहराई से विचार करने पर यह मान्यता सर्वथा निरर्थक सिद्ध होती है। एक ही बात पर

सोचने के अनेक दृष्टिकोण होते हैं। सोचने का तरीका किस स्तर का अपनाया गया—यही है मनुष्य के खिन्न अथवा प्रसन्न रहने का कारण।

अपने स्वरूप का, संसार की वास्तविकता का बोध होने पर सर्वत्र आनंद-ही-आनंद है। दुःख तो अपने आपे को भूल जाने का, संसार को कुछ से कुछ समझ बैठने के अज्ञान का है। यह अज्ञान ही भव बंधन है, इसे ही माया कहते हैं। प्राणी विविध ताप इसी नरक की आग में जलने से सहता है। सच्चिदानंद परमात्मा के इस सुरम्य नंदन वन जैसे उद्यान में दुःख का एक कण भी नहीं, दुखी तो हम केवल अपने दृष्टि दोष के कारण वस्तु, व्यक्ति और परिस्थिति का विकृत रूप देखकर ही डरते और भयभीत होते हैं। यदि यह दृष्टि दोष सुधर जाय, तो मिथ्या आभास के कारण उत्पन्न हुई भ्रांति का निवारण होने में देर न लगे और आत्मा की निरंतर आनंद-उल्लास से परिपूर्ण-परितृप्त रहने की स्थिति बनी रहे।

इस तत्त्वदर्शन को समझने वाला व्यक्ति जादूगर की कलाकारिता को देखकर हँसता रहता है और अपना पेट फाड़ने से लेकर हाथ में से रुपया बरसाने तक के चित्र-विचित्र खेलों को तटस्थ भाव से देखता रहता है। कर्म प्राणी का कर्तव्य है। कर्तव्य को दोष न लगे, इसलिए वह पूर्ण उत्तरदायी और कर्मनिष्ठ की तरह अपना हर कार्य पूरी कुशलता, तन्मयता एवं कलाकारिता के साथ संपन्न करता है और अपने उत्कृष्ट चिंतन एवं आदर्श कर्तृत्व मात्र से संतुष्ट तथा प्रसन्न बना रहता है। उसे आनंदित रहने के लिए किसी बाहरी वस्तु, व्यक्ति या परिस्थिति की आवश्यकता नहीं पड़ती। कोई घटना-क्रम, कोई परिवर्तन उसकी स्थिर आनंदानुभूति में व्यवधान डाल सकने में समर्थ नहीं होता। उसे अनुकूल-प्रतिकूल हर स्थिति में हँसता-मुस्कराता—हलका-फुलका देखा जा सकता है। नाटक के पात्रों की तरह वह अपनी भूमिका भर निबाहता रहता है। इतने पर भी उसे पानी में रहने वाली नांव की तरह—कीचड़ में

उसे कमल की तरह अपनी स्वतंत्र स्थिति बनाये रहने में कोई कठिनाई नहीं होती।

पाँच कोशों की भावनात्मक पृष्ठभूमि यही है। इन्हीं कसौटियों पर कसकर किसी व्यक्ति की आंतरिक स्थिति के बारे में जाना जा सकता है कि वह आत्मिक दृष्टि से कितना गिरा-पिछड़ा है अथवा उठने-विकसित होने में सफल हुआ है।

पंचकोशों की साधना में जप, तप, ध्यान, प्राणायाम, बंध, मुद्रा आदि का प्रयोग करना पड़ता है। इसके राजयोग, हठयोग, लययोग, प्राणयोग, ऋजुयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, तत्त्वयोग आदि ८४ योगों के आधार पर अनेकानेक व्यायाम क्रम बताए गए हैं। साधक उन्हें अपनी परंपरा एवं पात्रता के अनुसार अपनाते हैं। इन सब साधनाओं में ज्ञान और कर्म से सम्मिश्रित तत्त्वयोग की साधना है जिसमें स्वाध्याय, सत्संग और चिंतन-मनन के माध्यम से आत्मशोधन करते हुए आदर्श कर्मनिष्ठा का अवलंबन लिया जाता है और सरलतापूर्वक लक्ष्यपूर्ति की दिशा में आगे बढ़ा जाता है।



अन्नमय कोश का परिष्कार और प्रतिफल

भारतीय दर्शन के अंतर्गत जीवन के सर्वांगीण विकास के लिए अन्नमय कोश की शुद्धि-पुष्टि और विकास को भी पर्याप्त महत्त्व दिया गया। भौतिक प्रगति हो या आध्यात्मिक; लक्ष्मी की प्राप्ति दोनों के लिए ही उसे आवश्यक और उपयोगी ठहराया गया है। योग साधनाओं में अन्नमय कोश की साधना को भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है और उसके अनेक लाभों एवं सिद्धियों का भी उल्लेख मिलता है। इसके द्वारा ही योगी आरोग्य तथा शरीर-संस्थान पर अद्भुत अधिकार प्राप्त कर लेते हैं। इच्छानुसार शरीर को गर्म या ठंडा रखना, ऋतुओं के प्रभाव से अप्रभावित रहना, शरीर की ऊर्जा पूर्ति के लिए आहार पर आश्रित न रहकर उसे सीधे प्राकृतिक स्रोतों से प्राप्त कर लेना, दीर्घ जीवन, शरीर में वृद्धावस्था के चिह्न न उभरना आदि, सभी उपलब्धियाँ अन्नमय कोश की साधना पर निर्भर करती हैं।

ये सब उपलब्धियाँ आध्यात्मिक साधना मार्ग पर बढ़ने के लिए भी उपयोगी सिद्ध होती हैं और सांसारिक जीवनक्रम में भी इनका प्रत्यक्ष लाभ मिलता है। ये उपलब्धियाँ बड़ी आकर्षक भी लगती हैं। किंतु योग मार्ग की ये बहुत प्रारंभिक सीद्धियाँ हैं। यह इसलिये आवश्यक है कि योग साधन के लिए आवश्यक साधनाक्रम में यह शरीर अपनी असमर्थता प्रकट करके साथ देने से कतराने न लगे। अन्नमय कोश शुद्ध और पुष्ट होने पर ही व्यक्ति सांसारिक उतार-चढ़ावों के बीच अपनी शरीर-यात्रा को संतुलित क्रम से चलाता हुआ, अपने आत्मिक लक्ष्य की ओर अनवरत क्रम से बढ़ सकता है।

एक ओर सूक्ष्म पक्ष है, जिसके लिए अन्नमय कोश को तैयार करना पड़ता है। आत्मिक प्रगति के क्रम में शरीर में अनेक दिव्य संवेदनाओं का संचार होता है। कुसंस्कारित अन्नमय कोश उसमें

बाधक बन जाता है अथवा वांछित सहयोग नहीं दे पाता। इस क्रम में अनेक दिव्य क्षमताएँ उभरती हैं, उन्हें धारण करना, उनके स्पंदनों को सहन करके अपना संतुलन बनाये रखना भी बहुत आवश्यक है। ये सभी बातें परिष्कृत एवं विकसित क्षमता संपन्न अन्नमय कोश से ही संभव है।

इन सब उपलब्धियों एवं क्षमताओं का लाभ पाने के लिए अन्नमय कोश, उसके स्वरूप तथा सामान्य गुण-धर्मों के बारे में भी साधक के मस्तिष्क में स्पष्ट रूपरेखा होनी चाहिए। पाँचों कोशों की संगति में अन्नमय कोश की भूमिका तथा उसके महत्त्व को ठीक प्रकार समझना आवश्यक है।

हमारी सत्ता, स्थूल-सूक्ष्म अनेक स्तर के तत्त्वों के संयोग से बनी है। उसमें से हर एक घटक का अपना-अपना महत्त्व है। किसी एक घटक का महत्त्व बतलाने से किसी दूसरे घटक का महत्त्व कम नहीं होता, क्योंकि वे एक-दूसरे का सहयोगी-पूरक तो है, किंतु उसका स्थान वह स्वयं नहीं ले सकता। उदाहरण के लिए भवन निर्माण में प्रयुक्त सीमेंट का गारा (मॉर्टर) लें, उसमें सीमेंट, बालू, पानी, रंग आदि सभी मिलाए जाते हैं। किसी एक का भी स्तर घटिया हो, तो गारा घटिया हो जायेगा। उसकी लोच, मजबूती, सुंदरता आदि इन सभी के संतुलन-संयोग से है। हमारे अस्तित्व के बारे में भी यही तथ्य लागू होता है। हमारे अस्तित्व के हर घटक का, हर कोश का, अपना-अपना महत्त्व है। इसीलिए उन सबकी उत्कृष्टता एवं संतुलन का ध्यान रखना आवश्यक है।

हमारी संरचना में एक बड़ा भाग वह है, जिसका सीधा संबंध स्थूल पदार्थों—पंचभूतों से है। उसके अस्तित्व पोषण एवं विकास के लिये स्थूल पदार्थों की आवश्यकता पड़ती है। शरीर-संस्थान के इसी भाग को अन्नमय कोश कहते हैं। यह अगणित छोटी-छोटी स्थूल इकाइयों से बना हुआ है। इन्हें कोशिका (सेल) कहते हैं। स्पष्ट है कि ये इकाइयाँ जिस प्रकार की, जिन गुण-धर्मों से युक्त होगी, संयुक्त शरीर-संस्थान में भी वही गुण-धर्म प्रकट होंगे। उन

मूल इकाइयों को बदले बिना बाह्य दृश्य संस्थान में इच्छित विशेषताएँ पैदा नहीं की जा सकतीं। अन्नमय कोश को आवश्यकता के अनुरूप बनाने-ढालने के लिए भी उसकी मूल इकाइयों को ध्यान में रखना होगा।

उदाहरण के लिए कोई वस्त्र लें। वस्त्र किस कोटि का है ? यह इस आधार पर निर्भर करता है कि उसकी रचना में किस प्रकार के धागों का उपयोग हुआ है। उन धागों के लिए किस प्रकार के तंतुओं (फाइबर्स) का प्रयोग किया गया है। वस्त्र कैनवास जैसा मजबूत है, रेशम जैसा भड़कीला है, टेरेलीन जैसा लुभावना है, ऊन जैसा गर्म है, मखमल जैसा आरामदेह है या मलमल जैसा हलका एवं मुलायम है—ये सब विशेषताएँ उसके लिए प्रयुक्त धागों एवं उसके तंतुओं के आधार पर टिकी रहती हैं।

इसी तरह शरीर भी अनेक प्रकार की विशेषताओं से युक्त होते हैं। बंदर एवं हिरन जैसा फुर्तीला, सिंह एवं हाथी जैसा बलशाली, बैल एवं घोड़े जैसा परिश्रमी, गैंडे जैसा कठोर, हंस जैसा सौम्य, सर्प जैसा लचकदार आदि अनेक प्रकार की विशेषताएँ शरीरों में पाई जाती हैं अथवा पैदा की जा सकती हैं। यह बहुत स्थूल वर्गीकरण है। इससे थोड़े सूक्ष्म स्तर पर देखें, तो ध्रुव प्रदेश एवं हिमालय की ठंड को स्वाभाविक रूप से सहन कर सकने वाले शरीर, भूमध्य रेखा के निकटस्थ प्रदेशों की भीषण गर्मी में सुखी रहने वाले शरीर, जल जीवों की तरह पानी के संसर्ग में रहने वालों से लेकर मरुभूमि के शुष्कतम वातावरण में निवास करने वाले शरीरों की अपनी-अपनी विशेषताएँ उनकी सेल-इकाइयों के अनुरूप ही विकसित होती हैं।

शरीर-विज्ञान की अंतरंग शोधों से यह स्पष्ट हो गया है कि हृदय, आमाशय, आँख, कान, त्वचा आदि जो यंत्र हैं। इन यंत्रों के संचालक सूक्ष्म अवयव अन्य ही होते हैं और उन संचालक तत्त्वों या अवयवों के स्वरूप पर ही हमारे स्वास्थ्य का बहुत कुछ आधार निर्भर रहता है। इन सूक्ष्म अवयवों में हारमोनो का स्थान अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। उनकी सक्रियता-निष्क्रियता का हमारी शारीरिक एवं

मानसिक स्थितियों पर भारी प्रभाव पड़ता है। शरीर की आकृति कैसी भी हो, उसकी प्रकृति का निर्माण तो मुख्यतः इन हारमोन रसों से ही प्रभावित होता है। यद्यपि आकृति पर भी इन जीवन रस-स्त्रावों का प्रभाव पड़ता ही है। कई ऐसे उदाहरण मिलते हैं कि विशेष मनःस्थिति के कारण किन्हीं युवतियों का रूप-लावण्य तब तक बना रहा, जिस आयु में सामान्य रूप से शरीर पर वृद्धता के चिन्ह उभर आते हैं। उनके बने रहने का रहस्य सूत्र भी निश्चय ही इन हारमोन-स्त्रावों में छिपा हुआ माना जाता है। यद्यपि औषधि विद्या और शल्य-प्रक्रिया की पहुँच अभी वहाँ तक नहीं हो पाई है, पर उनके स्वरूप की कुछ-कुछ जानकारी तो आधुनिक शरीरशास्त्र को हो ही गई है।

हारमोन स्त्रावों के विशेष अनुसंधानकर्ता डॉ० क्रुकशेक ने इन स्त्रावों की आधार ग्रंथियों को 'जादुई ग्रंथियाँ' कहा है और बताया है कि व्यक्ति की वास्तविक स्थिति को जानने के लिए इन स्त्रावों के संतुलन और क्रिया-कलाप का परीक्षण करके ही यह जाना जा सकता है कि उसका स्तर एवं व्यक्तित्व सचमुच क्या है ?

हारमोन वे रासायनिक तत्त्व या रहस्यमय जीवन रस हैं, जो अंतःस्त्रावी ग्रंथियों द्वारा स्रवित होते हैं। इन ग्रंथियों की अद्भुत क्षमता के संबंध में अभी वैज्ञानिकों को पूरी जानकारी नहीं है, उनके बारे में सांकेतिक जानकारी ही प्राप्त हो सकी है। फिर भी यह विश्वास किया जाता है कि यदि इनके प्रभाव को जाना और नियंत्रित किया जा सके, तो मनुष्य अपने भीतर आश्चर्यजनक परिवर्तन ला सकता है। अंतःस्त्रावी ग्रंथियों और उनसे उत्पन्न हारमोनों के आश्चर्यजनक प्रभाव के ढेरों प्रमाण शोधकर्ताओं ने प्राप्त किये हैं।

"एस्ट्रॉलॉजिकल कॉरिलेशन्स विद द डक्टलेस ग्लैंड्स" में अंतःस्त्रावी ग्रंथियों की चर्चा आंतरिक ग्रहों के रूप में की गई है। जिस प्रकार सौरमंडल के विविध ग्रह परस्पर संतुलन स्थिति बनाए हैं, वैसे ही ये अंतःस्त्रावी ग्रंथियाँ शारीरिक, मानसिक संतुलन साधे रहती हैं।

इस तुलना क्रम में सूर्य की पीनियल से, चंद्र की पिट्यूटरी से मंगल की पैराथाइराइड से, बुध की थाइराइड से, बृहस्पति की ऐड्रीनल से तथा शुक्र की थाइमस से तुलना की गई है। "ऑकल्ट एनॉटॉमी" के लेखक ने इन ग्रन्थियों का उल्लेख "ईथर सेंटर्स" के रूप में किया है तथा उनके उद्दीपन को अंतर्गृही चेतना के साथ जोड़ा है। प्रतीत होता है कि अविज्ञात चेतना-केंद्रों से इन ग्रन्थियों के माध्यम से मनुष्य को कुछ असाधारण अनुदान मिलता रहता है।

उपरोक्त कथानुसार अंतःस्त्रावी ग्रन्थियों का संबंध ब्रह्मांडीय चेतना से—सूक्ष्म जगत् से बनता है। वे विश्व शक्तियों से साथ आदान-प्रदान का काम करती हैं। शरीरशास्त्र के अनुसार उनका प्रभाव कायकलेवर के अंतर्गत शरीर और मस्तिष्क को प्रभावित करता है। इसका अर्थ हुआ कि ये ग्रन्थियाँ भीतर और बाहर दोनों ही क्षेत्रों में अपना प्रभाव छोड़ती हैं। उनका प्रभाव व्यक्तित्व की विविध-विध क्षमताएँ उभारने में असाधारण रूप से होता है। इन ग्रन्थियों को नियंत्रण से बाहर माना और समझा जाता है कि इनकी प्रकृति एवं क्रियापद्धति बदलना अपने हाथ की बात नहीं है, किंतु ऐसा है नहीं। सूक्ष्म शरीर को प्रभावित करने वाले साधनात्मक प्रयत्नों से इन ग्रन्थियों की स्थिति बदली जा सकती है और अनावश्यक हारमोनों का उत्पादन घटाकर, जो उपयोगी हैं उन्हें बढ़ाया जा सकता है। अन्नमय कोश में इन ग्रन्थियों के नियंत्रण सूत्र माने गये हैं।

यह कार्य अध्यात्म के माध्यम से ही संभव है। पिछले दिनों आनुवंशिकी विज्ञान के क्षेत्र में काफी शोध-प्रयोग किये गए और पाया गया कि मनुष्य के शरीर मन और व्यक्तित्व को बनाने में ऐसे कारणों का भी बहुत बड़ा हाथ होता है जो दुर्भाग्य या सौभाग्य की तरह बहुत पहले से ही पल्ले बँधी होती है और उनसे न पीछा छुड़ाना संभव होता है तथा न परिवर्तन-पुरुषार्थ का ही प्रतिफल होता है। ऐसे प्रसंगों पर अध्यात्म साधना ही एकमात्र उपाय है, जिनके सहारे वंशानुक्रम एवं संग्रहीत संस्कारों में अभीष्ट परिवर्तन

संभव हो सकता है। इस दृष्टि से शरीर विज्ञान एवं आरोग्य शास्त्र की अपेक्षा अध्यात्म उपचारों की सामर्थ्य बहुत बड़ी-चढ़ी है। उनके सहारे शारीरिक एवं मानसिक स्थिति का ही नहीं स्वभाव, दृष्टिकोण एवं समूचे व्यक्तित्व का ही कायाकल्प हो सकता है।

व्यक्तित्व का आधार विज्ञान की दृष्टि में

वंशानुक्रम विज्ञान में अब तक जो शोधें हुई हैं, उनके अनुसार संतान के व्यक्तित्व का ढाँचा बनाने में जीन्स काम करते हैं, वे न जाने कितनी पीढ़ियों से चले आते हैं। मातृकुल और पितृकुल के सूक्ष्म उत्तराधिकारी से वे बनते हैं। सम्मिश्रण की प्रक्रिया द्वारा वे परंपरागत स्थिरता ही बनाए नहीं रखते, वरन् विचित्र प्रकार से परिवर्तित होकर कुछ से कुछ बन जाते हैं। यदि पीढ़ियों को दोषमुक्त, प्रखर एवं सुसंस्कृत बनाना है, तो इस जीन प्रक्रिया को प्रभावित तथा परिवर्तित करना होगा, यह अति कठिन कार्य है। उतनी गहराई तक पहुँच सकने वाला कोई उपाय, उपचार अभी तक हाथ नहीं लगा है जो इन सूक्ष्म इकाइयों के ढाँचे में सुधार या परिवर्तन प्रस्तुत कर सके।

असमर्थता देखते हुए भी यह कार्य बड़ा आवश्यक है कि जीन्स जैसी व्यक्तित्व निर्माण की कुंजी को हस्तगत किया जाय। अन्यथा परिस्थिति, वातावरण, आहार-विहार, शिक्षा-परिष्कार के समस्त साधन जुटाने पर भी व्यक्तित्वों का निर्माण 'विधि-विधान' स्तर का ही बना रहेगा। इस संदर्भ में आशा की किरण अध्यात्म उपचार में ही खोजी जा सकती है। साधना प्रयत्नों से अन्नमय कोश की अंतःप्रक्रिया में परिवर्तन लाया जा सकता है। उससे जीन्सों की स्थिति बदलने और पीढ़ियों के उज्ज्वल भविष्य की आशा की जाती है। इतना ही नहीं, पैतृक प्रभाव के कारण वयस्क व्यक्ति का जो ढाँचा बन गया है, उसमें भी सुधार-परिष्कार संभव हो सकता है। शारीरिक कायाकल्प—मानसिक ब्रेनवाशिंग की चर्चा होती रहती है। व्यक्तित्वों के परिवर्तन में साधनात्मक प्रयोग का परिणाम और भी अधिक उत्साहवर्धक हो सकता है।

आनुवंशिकी खोजों से स्पष्ट हो गया है कि जीन्स में मात्र भोजन की पौष्टिकता का तो प्रभाव नगण्य ही होता है, शारीरिक सुदृढता, स्फूर्ति, अभ्यास, कर्म-कौशल, व्यवहार, विकास, चरित्र का स्तर, मस्तिष्कीय क्षमताओं के विकास आदि संपूर्ण व्यक्तित्व का सारभूत अंश उनमें विद्यमान रहता है। शरीर की विकृतियों का भी वे ही कारण होते हैं, पर उससे अनेक गुना महत्त्वपूर्ण तो मनःस्थिति, बौद्धिक क्षमताएँ और चारित्रिक प्रवृत्तियाँ होती हैं। आलस्य और प्रमाद के कारण व्यक्तित्व की क्षमताएँ, प्रखरताएँ बिखरती नष्ट होती रहीं, तो शारीरिक सुघडता में तो दोष आते ही हैं, व्यक्तित्व का मूलभूत स्तर घटिया होता जाता है। जिससे स्वयं का जीवन भी देवोपम विभूतियों से वंचित रह जाता है और अपनी संतान पर भी उसका विषाक्त प्रभाव छोड़ने का अपराधी बनना पड़ता है।

आनुवंशिकी शोधें इतना भर विश्वास दिलाती हैं कि उपयुक्त रक्त मिश्रण से नई पीढ़ी का विकास हो सकता है। आरोग्य-प्रत्यारोग्य की संभावना भी स्वीकार की गई है। वर्तमान स्थिति को बदलने के लिए नहीं, भावी में सुधार होने के संबंध में ही यह आश्वासन लागू होता है। वैज्ञानिक कहते हैं—'जीन' सामान्यतया निष्क्रिय स्थिति में पड़े रहते हैं। उनकी सक्रियता नर-नारी का संगम होने के उपरांत उभरती हैं। जीन का कार्य युग्म रूप से आरंभ होता है। जिनका एक सदस्य पिता से आता है और दूसरा माता से। यह जोड़ा मिलकर नई संरचना की विधि-व्यवस्था में जुटता है। यदि दोनों पक्ष एक प्रकृति के हुए, तो उनका सृजन ठीक उसी रूप में होगा, किंतु यदि भिन्नता रही, तो दोनों के सम्मिश्रण का जो परिणाम होगा, वह सामने आवेगा। जो पक्ष प्रबल (डॉमिनेंट) होगा, वह दुर्बल पक्ष (रिसेसिव) की विशेषताओं को दबाकर अपना वर्चस्व प्रकट करेगा। फिर भी दुर्बल पक्ष की कुछ विशेषताएँ तो उस नए सम्मिश्रित सृजन में दृष्टिगोचर होती रहेंगी। एकरूपता मिलते चलने पर आकार, भार बढ़ेगा। पानी में पानी मिलाते चलने पर रहेगा

पानी ही, उसका परिमाण भार बढ़ेगा। किंतु दो भिन्नताएँ मिलकर आकार ही नहीं, स्थिति और प्रकृति का परिवर्तन भी प्रस्तुत करेगी। पीला और नीला रंग मिला देने पर वे दोनों ही अपना मूल स्वरूप खो बैठेंगे और तीसरा नया हरा रंग बन जायेगा। जीनों की परंपरा में पाई जाने वाली विशेषता यों तथ्य रूप तो बनी रहेगी, पर उसका प्रत्यक्ष रूप परिवर्तित दृष्टिगोचर होगा। घोड़ी और गधे के सम्मिश्रण से नई किस्म के खच्चर पैदा होते हैं। कलमी पौधों के फल-फूलों में नये किस्म की विशेषताएँ उभरती हैं।

आनुवंशिकी के आधार पर अब तक इतना ही संभव हो सका है कि उपयुक्त जोड़े मिलाकर भावी पीढ़ी के विकास की बात सोची जाय। उस क्षेत्र में भी यह प्रश्न बना हुआ है कि निर्धारित जोड़े में जो विकृतियाँ चली आ रही होंगी, उनका निवारण, निष्कासन कैसे होगा ? अच्छाई, अच्छाई से मिलकर अच्छा परिणाम उत्पन्न कर सकती है, तो बुराई, बुराई से मिलकर अधिक बुराई क्यों उत्पन्न न करेगी ? यदि अच्छाई-बुराई के बीच संघर्ष आरंभ हो गया, तो नई मध्यवर्ती स्थिति बन सकती है, पर प्रगति का अभीष्ट परिणाम किस प्रकार उपलब्ध हो सकेगा ?

आनुवंशिकी शोधें तथ्यों पर पड़े पर्दे का तो उद्घाटन करती हैं, पर अभीष्ट सुधार के लिए उपयुक्त एवं सुनिश्चित मार्गदर्शन करना उनके लिए भी संभव नहीं हो सका है। वनस्पति में प्रत्यारोपण क्रिया के उत्साहवर्धक परिणाम सामने आए हैं। कृत्रिम गर्भाधान तथा दूसरे प्रत्यारोपणों का परिणाम भी किसी कदर अच्छा निकला है। मनुष्य की शरीर रचना में भी थोड़े हेर-फेर हुए हैं। गोरे और काले पति-पत्नी के संयोग से तीसरी आकृति बनी है। ऐंग्लोइंडियन रेस अपने ढंग की अलग ही है। इतने पर भी मूल समस्या जहाँ-की-तहाँ है। जीन के साथ जुड़ी हुई पैतृक परंपरा में जो रोग अथवा दुःस्वभाव जुड़े रहेंगे उनको हटाना या मिटाना कैसे बन पड़ेगा ? यह तो भावी पीढ़ी के परिवर्तन में प्रस्तुत कठिनाई

हुई। प्रधान बात यह है कि वर्तमान पीढ़ी को अवांछनीय उत्तराधिकार से किस प्रकार छुटकारा दिलाया जाय ? उसे असहाय स्थिति में पड़े रहने की विवशता से त्राण पाने का अवसर कैसे मिले ? इस क्षेत्र में परिवर्तन हो सकने की बात बहुत कठिन मालूम देती है।

मनुष्य के एक जीन में करोड़ों इकाइयाँ होती हैं। इन पर विषाणुओं, वायरसों की क्या प्रतिक्रिया होती है, प्रस्तुत शोधें इसी उपक्रम के इर्द-गिर्द घूम रही हैं। डॉ० हरगोविंद सिंह खुराना ने जिस जीन के कृत्रिम संश्लेषण में सफलता प्राप्त करके नोबुल पुरस्कार जीता था, वह मात्र १६६ इकाइयों वाला था। जिस नये जीवाणु की जीन बनाई जा सकी है, उसकी १६६ इकाइयों को सही क्रम से जोड़ने में ६ वर्ष लगे हैं। यह तो एक प्रयोग भर हुआ। मनुष्य के एक जीन में पाई जाने वाली करोड़ों इकाइयों को सही क्रम से जोड़ना अतीव दुष्कर है। यहाँ एक बात और भी ध्यान रखने की है कि प्रत्येक जीवाणु कोशिका में ऐसे कई लाख जीन होते हैं। जो मानव शरीर के भिन्न-भिन्न अवयवों के निर्माण एवं संचालन का कार्य संपन्न करते हैं।

शरीर के विभिन्न अंग-प्रत्यंगों के जीन्स द्वारा निर्माण की प्रक्रिया को अनुशासित रखने का दायित्व 'एंजाइमों' का है। ये 'एंजाइम' 'न्यूक्लिक एसिड' के माध्यम से—जीन्स से संबद्ध रहते हैं। चुंबकत्व-शक्ति के प्रयोगों—उपचारों द्वारा इन एंजाइमों को प्रभावित कर जीन्स के विकास-क्रम पर प्रभाव डाला जा सकता है। अभी वैज्ञानिक इस दिशा में अध्ययन कर रहे हैं।

भारत में अतीतकाल में सुसंतति के लिए तप-साधना का विधान था, जो कि मनुष्य में अंतर्निहित चुंबकत्व शक्ति का विकास-अभिवर्धन करता था। कृष्ण और रुक्मिणी ने बर्द्रीनाथ धाम में बारह वर्ष तक तप कर अपनी चुंबकत्व शक्ति को अत्यधिक उत्कृष्ट बना लिया था। तभी उन्हें प्रद्युम्न के रूप में मनोवांछित संतान प्राप्त हो सकी थी।

वैज्ञानिकों का मत है कि जीन्स की विशेषताएँ विकिरणों द्वारा प्रभावित की जा सकती हैं। शरीर के भीतर रश्मियों के केंद्रीयकरण द्वारा ऐसी विकिरण-चिकित्सा की व्यवस्था की जा सकती है। विद्युत्-क्षेत्र (इलेक्ट्रिक-फील्ड्स) द्वारा जीन्स की रासायनिक और विद्युतीय दोनों विशेषताओं में परिमार्जन-संशोधन किये जा सकते हैं। ध्वनियों तथा अतिध्वनियों के क्षेत्र में भी खोजें चल रही हैं। वैज्ञानिकों का विश्वास है कि उनके द्वारा भी जीन्स में परिवर्तन की विधि खोजी जा सकती है।

भौतिक विज्ञान से यह संभव हो या न हो, पर अध्यात्म विज्ञान से तो यह साध्य है ही। भारतवर्ष में साधना द्वारा शरीरस्थ जैवीय विद्युत् को प्रखर बनाकर मंत्रों के माध्यम से उत्पन्न अतिध्वनियों तथा यज्ञादि के विकिरण का उपयोग इस दिशा में सफलतापूर्वक किया जाता रहा है। इंद्र को जीतने में समर्थ वृत्रासुर की उत्पत्ति तथा राजा दशरथ के यहाँ राम-भरत जैसी सुसंतति की प्राप्ति ऐसे ही प्रयोगों द्वारा संभव हुई थी।

अध्यात्म विज्ञान वहाँ से आरंभ होता है, जहाँ भौतिक विज्ञान की सीमाएँ प्रायः समाप्त हो जाती हैं। स्थूल की अगली सीढ़ी सूक्ष्म है। अंतःस्वावी ग्रंथियों से निकलने वाले विचित्र हारमोन स्त्रावों की तरह आनुवंशिकी क्षेत्र के रहस्यमय घटक 'जीन' भी उतने ही विलक्षण हैं। इन्हें प्रभावित करने में भौतिकी सफल न हो सके, तो इसमें निराश होने की कोई बात नहीं है। सुनियोजित अध्यात्म विज्ञान के पीछे वे संभावनाएँ झाँकती हैं, जिससे न केवल हारमोन और जीन वरन् ऐसे-ऐसे अनेकों रहस्यमय केंद्र प्रभावित-परिष्कृत किये जा सकते हैं, जो सामान्य मनुष्य जीवन को असामान्य—देवोपम बना सकने में समर्थ हैं। अध्यात्म विज्ञान की 'अन्नमय कोश' की प्रथम कक्षा की प्रयोग-प्रक्रिया इसी उद्देश्य को पूरा करती है।

अन्नमय कोश के सूक्ष्म घटक

अन्नमय कोश के बाह्यावरण से आगे चलकर इसका अध्ययन किया जाए, तो इसका स्वरूप सूक्ष्म क्षमताओं से भरा हुआ उभर कर सामने आयेगा। किसी भी क्षेत्र में उच्चस्तरीय साधक का सारा शरीर उसकी मुख्य साधना में सहयोगी बन जाता है। श्रेष्ठ चित्रकार जब किसी चित्र की कल्पना करता है, तो इसके शरीर की हर इकाई इसके स्पंदनों से प्रभावित होती है। शरीर की हलचल में उस कल्पना के स्पंदन समाविष्ट हो जाते हैं तथा निर्जीव तूलिका सामान्य रंगों से ही जीवंत चित्र का निर्माण कर देती है। वाणी के साधक गायक के मन में जो भाव उभरते हैं, वह उसके हाव-भाव तथा स्वरलहरी में न जाने कहाँ से, कैसे गुँथ जाते हैं और उसमें अद्भुत प्रभाव पैदा कर देते हैं। अपने कार्य के प्रति निष्ठावान् चिकित्सक के चर्मचक्षुओं और मांसपेशियों में न जाने क्या विशेषता आ जाती है कि वह रोग के सूक्ष्म चिह्न तथा गंभीर से गंभीर स्तर को पकड़ लेता है। इन साधकों के चमत्कारों के पीछे यही तथ्य छिपा है कि उनके अन्नमय कोश की हर इकाई उनके अंदर की सूक्ष्म संवेदनाओं को अनुभव करने, स्वीकार करने तथा उसके अनुरूप प्रभाव पैदा करने में सक्षम हो जाती है। उसके संस्कार उसके अनुरूप हो जाते हैं। किसी भी उच्चस्तरीय साधना के लिए, विज्ञान से लेकर उपासना तक के लिए अपने अन्नमय कोश को ऐसी ही सुसंस्कृत, सुयोग्य, सक्षम स्थिति में लाना आवश्यक होता है। उसके लिए मूल इकाइयों को विशेष रूप से गढ़ना-ढालना पड़ता है। इसे ही अन्नमय कोश का परिष्कार-विकास की साधना कहा जाता है।

प्रश्न उठता है कि क्या अन्नमय कोश की मूल इकाइयों को वांछित ढंग का बनाया जा सकता है ? हाँ, यह संभव है। इसकी पुष्टि भारतीय दर्शन की सनातन मान्यता तथा वर्तमान वैज्ञानिक शोधों, दोनों ही आधारों पर होती है। वस्त्र आदि तो जैसे बन गये, वैसे बन गये। कैनवास को मखमल में नहीं बदला जा सकता क्योंकि वह जड़ संस्थान है। किंतु शरीर तो चेतन

संस्थान है। उसमें नये कोशों का निर्माण तथा पुरानों का विघटन संभव ही नहीं, वह तो उसकी एक स्वाभाविक एवं अनिवार्य प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया धीमी पड़ने से ही मनुष्य शरीर जरा-जीर्ण होने लगता है। जरा, बुढ़ापा कुछ और नहीं, अन्नमय कोश में नवीन स्वस्थ कोशिकाओं की सरचना तथा पुरानों के निष्कासन की गति शिथिल हो जाना मात्र है। इस प्रक्रिया को व्यवस्थित, नियमित बनाकर शरीर-संस्थान में क्रमशः इच्छित परिवर्तन लाये जा सकते हैं।

सामान्य व्यक्तियों में भी अन्नमय कोश की इकाइयों का परिवर्तन होता ही रहता है। किंतु उसकी कोई व्यवस्था, योजना न होने के कारण एक ढर्रा भर चलता रहता है। सामान्य रूप से किसी भी फैक्ट्री में पुराने पुर्जों तथा पुरानी मशीनों के स्थान पर नये पुर्जों एवं नई मशीनों को स्थापित करने का क्रम चलता ही रहता है। उससे एक ढर्रे का उत्पादन निकलता भी रहता है। किंतु कोई कुशल शिल्पी-उद्योगी जब अपने उत्पादन का स्तर बढ़ाने, नई वस्तुएँ उत्पादित करने की योजना बनाता है, तो फिर ढर्रे का क्रम पर्याप्त नहीं। उस स्थिति में लक्ष्य को ध्यान में रखकर सूझ-बूझ के साथ हर परिवर्तन व्यवस्थित ढंग से करना होता है। पुर्जा और मशीनों से लेकर औजार (टूल) तथा कच्चे माल की व्यवस्था भी उसी योजना के अनुरूप करनी होती है। अपने शरीर की हर कोशिका को एक सजीव पुर्जा, औजार, मशीन मानकर उन्हें लक्ष्य के अनुरूप बनाना, उसके लिए उपयुक्त आहार-विहार अपनाना, योग साधक के लिए आवश्यक हो जाता है।

सामान्य व्यक्ति के अन्नमय कोश तथा योगी के अन्नमय कोश में अंतर क्यों ? किस आधार पर आवश्यक है ? इसे एक सामान्य उदाहरण से समझा जा सकता है। एक बिजली की लाइन को लें। विद्युत् तारों में बहती है। उन्हें सहारा देने के लिए खंभे रहते हैं। तार और खंभों के बीच में ऐसे उपकरण लगे रहते हैं जो बिजली को खंभों में होकर पृथ्वी में प्रविष्ट होने से

रोके रहें। उन्हें 'कुचालक इंसुलेटर' कहते हैं। सामान्य दबाव (वोल्टेज) की विद्युत् के लिए तार, खंभे तथा इंसुलेटर सामान्य ही चल जाते हैं। किंतु यदि ऊँचे दबाव (हाई वोल्टेज) की बिजली अधिक मात्रा में प्रवाहित करनी हो, तो उसके लिए यह सभी उपकरण विशिष्ट स्तर के लगाने पड़ते हैं। यही बात सामान्य व्यक्ति तथा विशिष्ट साधक के साथ लागू होती है। सामान्य जीवनक्रम में सामान्य शारीरिक जैवीय विद्युत् (बाँयो इलेक्ट्रिसिटी) की ही आवश्यकता पड़ती है, किंतु उच्च लक्ष्यों के लिए अधिक प्रखर शक्ति तरंगों पैदा करनी होती हैं। उनका संवेदन, संचार करने के लिए अधिक सशक्त संस्थान की आवश्यकता स्वाभाविक रूप से पड़नी ही चाहिए। इसीलिए साधक को अपने अन्नमय कोश के परिष्कार, उसकी पुष्टि और विकास के लिए विशेष ध्यान देना, विशेष प्रयास करना होता है। तभी वह प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय तथा आनंदमय कोशों के विकास में सहायक बनने तथा उनकी विकसित स्थिति के साथ तालमेल बिठाने में समर्थ हो पाता है।

तालमेल बिठाने की बात यों ही नहीं कही गई है, उसका अपना विशिष्ट अर्थ है। निर्जीव घटक तालमेल नहीं बिठा सकते, वह तो चेतना संपन्न के लिए ही संभव है। अन्नमय कोश की हर इकाई, हर कोशिका (सेल) को आज के वैज्ञानिक भी स्वतंत्र जैविक इकाई मानने लगे हैं। हर सेल में उसका हृदय न्यूक्लियस होता है। उसके श्वास-संस्थान को वैज्ञानिक भाषा में 'माइटोकॉण्ड्रिया' कहते हैं। हर सेल में एक 'गाल्मी एप्रेटस' होता है, जो उनके पाचन-संस्थान का काम करता है। हर कोश अपने जैसे नये कोश का उत्पादन कर सकता है। इस व्यवस्था को वैज्ञानिक 'न्यूक्लियोलस एण्ड क्रोमेटिन नैटवर्क' कहते हैं। हर सेल में अपनी एक विशिष्ट जैवीय विद्युत् का प्रभार (चार्ज) होती है जिसे उसका प्राण कहते हैं। इस प्रकार हर कोशिका एक स्वतंत्र जैविक इकाई के रूप में अपने अस्तित्व को बनाए रखते हुए, शरीर-संस्थान से अपना तालमेल बिठाये रखता है।

अन्नमय कोश के कोटि-कोटि सदस्य ये कोशिकाएँ (सेल) इस उद्देश्य-लक्ष्य के अनुरूप स्वयं में स्वाभाविक क्षमता उत्पन्न कर सकें, उसके लिए विशिष्ट संस्कारवान् नई कोशिकाओं का उत्पादन कर सकें, तो उच्चतम लक्ष्य प्राप्ति की सुनिश्चित पृष्ठभूमि बन जाती है। इसके लिए उन्हें विशेष रूप से योजनाबद्ध प्रक्रिया द्वारा तैयार किया जाता है। उनके लिए आहार, विहार, चिंतन आदि की विशिष्ट एवं व्यवस्थित पद्धति का अनुकरण करना होता है। जैसे बच्चों को सुयोग्य बनाने के लिए उन्हें साधन ही नहीं श्रेष्ठ संस्कार भी देने पड़ते हैं, इसी प्रकार इन कोशिकाओं के लिए भी आहार-विहार से लेकर ध्यान उपासना तक के अनेक माध्यम अपनाने होते हैं। उन सबके संयोग से ही अन्नमय कोश की प्रभावशाली साधना का स्वरूप बनता है।



मनोमय कोश का विकास परिष्कार

मस्तिष्कीय क्षमता के चमत्कार पग-पग पर सामान्य लोक-व्यवहार में दृष्टिगोचर होते हैं। सूझ-बूझ वाले बुद्धिमान् मनुष्य हर क्षेत्र में आगे बढ़ते और सफलता पाते हैं। इसके विपरीत मूढ़मति और मंद बुद्धि लोग अनुकूल परिस्थितियाँ रहने पर भी पिछड़ी स्थिति में पड़े रहते हैं। जीवन की गहन समस्याओं को सुलझाने में और आत्मोत्कर्ष का लाभ प्राप्त करने में भी मनःस्थिति की प्रखरता ही लाभ देती है। ज्ञान-तंतुओं के माध्यम से यह तत्त्व समस्त शरीर में फैला हुआ है, मस्तिष्क उसका केंद्रीय कार्यालय है। यह सुविस्तृत ज्ञान-विस्तार अध्यात्म की भाषा में मनोमय कोश कहलाता है। बौद्धिक प्रगति के लिए सामान्यतया प्रशिक्षण के स्कूली तथा दूसरी तरह के उपाय काम में लाए जाते हैं, पर मनःचेतना के आध्यात्मिक उपचार साधनात्मक हैं। उनके माध्यम से मनःशक्ति विकसित और परिष्कृत की जाती है।

मनोमय कोश की साधना मस्तिष्कीय क्षेत्र में घुसे मनोविकारों को—दुष्प्रवृत्तियों को निरस्त करने के लिए लड़ा जाने वाला महाभारत है, साथ ही इसमें धर्म राज्य की, राम राज्य की स्थापना का लक्ष्य-संकल्प भी जुड़ा हुआ है।

इस संदर्भ में वैज्ञानिक-अनुशीलन ध्यान देने योग्य है। बहुत समय पहले शारीरिक रोगों का कारण, वात-पित्त, कफ, अपच, मलावरोध, ऋतु प्रभाव, विषाणुओं का आक्रमण आदि माना जाता रहा है। नवीनतम शोधें शरीर पर पूरी तरह मनःसत्ता का अधिकार मानती हैं और बताती हैं कि बाह्य कारणों से उत्पन्न हुए रोग तो शरीर की जीवनी शक्ति स्वयं ही अच्छी कर लेती हैं अथवा मामूली से उपचार से वे अच्छे हो सकते हैं। जटिल रोग तो आमतौर से मनोविकारों के ही परिणाम होते हैं। उनका

निराकरण दवा-दारु से नहीं, मानसिक परिशोधन से ही संभव हो सकता है।

शारीरिक ही नहीं, मानसिक रोगों का भी यही प्रधान कारण है। दुष्कर्म अथवा दुर्बुद्धिग्रस्त व्यक्ति शारीरिक ही नहीं, मानसिक रोगों से भी ग्रसित रहते हैं। उन्माद-विस्फोट की स्थिति न आए तो भी असंतुलन से ग्रस्त व्यक्ति अर्द्ध-विक्षिप्त स्थिति में पड़े रहते हैं। अकारण दुःख पाते और अकारण दुःख देते हैं। इनकी मनःस्थिति कितनी दयनीय होती है। यह देखने भर से बड़ा कष्ट होता है। शारीरिक व्यथाओं से पीड़ितों की अपेक्षा मनोरोगों से ग्रस्त लोगों की संख्या ही नहीं, पीड़ा भी अधिक है। इन व्यथाओं से छुटकारे का उपाय अस्पतालों में नहीं, मानसिक संशोधन की साधनाओं पर ही अवलंबित है। वे उपाय, उपचार अन्य प्रकार के भी हो सकते हैं, पर अध्यात्म विज्ञान के आधार पर उसे मनोमय कोश से, साधना से अधिक सुविधापूर्वक संपन्न किया जा सकता है।

काय विज्ञान के विद्यार्थी जानते हैं कि मस्तिष्क के साथ जुड़े हुए तंतु सारे शरीर में फैले हैं। उन्हीं के माध्यम से इस जटिल यंत्र का संचालन होता है। इंद्रियों की क्रियाशक्ति, अनुभूतियाँ, सरसताएँ मस्तिष्क में ही जाकर खुलती हैं। इंद्रिय-गोलक, तो मात्र सूचनाएँ संग्रह करने और उन्हें मस्तिष्कीय केंद्रों तक पहुँचाने भर का काम करते हैं। कोई मानसिक कष्ट होने पर सारा शरीर शिथिल हो जाता है और क्रियाशक्ति में स्पष्टतः अस्त-व्यस्तता दिखने लगती है। भय, चिंता, शोक, निराशा जैसे प्रसंगों पर किसी भी मनुष्य का चेहरा उदास और सारा शरीर शिथिल देखा जा सकता है। क्रोध, अपमान, द्वेष, प्रतिशोध की स्थिति में किस प्रकार अंग-प्रत्यंगों में उत्तेजना दिख जाती है, इसे किसी आवेशग्रस्त पर छाए हुए भावोन्माद को देखकर सहज ही देखा, समझा जा सकता है। प्रसन्न और निश्चित रहने वाले स्वस्थ रहते और दीर्घजीवी बनते हैं। इसके विपरीत क्षुब्ध रहने वाले अकारण दुर्बल होते जाते हैं और अकाल मृत्यु से असमय

मरते हैं। यह तथ्य स्पष्ट करते हैं कि शरीर-संस्थान पर आहार-विहार का, जलवायु का जितना प्रभाव पड़ता है, उससे कहीं अधिक भाव-संस्थान का होता है।

शरीर में स्नायुमंडल द्वारा तथा नलिकाविहीन ग्रंथियों द्वारा भावनाएँ क्रियाशील होती हैं। हमारे संपूर्ण शरीर में स्नायुओं का जाल बिछा हुआ है। सामान्यतः स्नायु उज्ज्वलवर्णी होते हैं और तार की तरह ठोस होते हैं। हमारी सभी पेशियाँ स्नायुओं के ही आधार पर चलती हैं। प्रत्येक पेशी में पहुँचने वाला मुख्य स्नायु सुतली की तरह मोटा होता है। फिर उसकी शाखा-प्रशाखाएँ अधिकाधिक पतली होती चली जाती हैं। कई प्रशाखाएँ तो बारीक सूत जैसी पतली होती हैं।

सम्पूर्ण स्नायुमंडल के दो भाग हैं—(१) ऐच्छिक, (२) अनैच्छिक। चलने-फिरने, झुकने, मुड़ने, वस्तुएँ उठाने, रखने आदि की क्रियाओं से हम अपने हाथ-पैर आदि को इच्छानुसार हिलाते हैं। यह ऐच्छिक स्नायुओं के ही कारण हैं। अनैच्छिक स्नायुओं पर हमारा ऐसा अधिकार नहीं होता। वे शरीर की आंतरिक क्रियाएँ संपादित करते हैं। जैसे हृदय की धड़कनें, साँसों का आना-जाना आदि।

अनैच्छिक स्नायुमंडल का केंद्र मस्तिष्क का एक लघु अंश हाइपोथेलामस होता है। यही हाइपोथेलामस नारी व पौरुष ग्रंथियों को भी नियंत्रित करता है। साथ ही 'मोबएमीन आक्सीडेज' नामक किण्वक (एंजाइम) भी संपूर्ण शरीर में विकीर्ण होते हुए भी केंद्रीय स्नायविक प्रणाली में विशेष रूप से जमा रहता है। 'हाइपोथेलामस' द्वारा पिट्यूटरी ग्रंथि भी उत्तेजित होती है और उससे विभिन्न हारमोन्स निकलते हैं जो भावनाओं का परिणाम भी होते हैं और नई भावनाओं का कारण भी। किसी नई परिस्थिति के उपस्थित होने पर नलिकाविहीन ग्रंथियों पर दबाव पड़ता है और वे विभिन्न हारमोनों को स्रवित करती हैं। इन हारमोनों की शरीर में प्रतिक्रिया होती है और यह प्रतिक्रिया उसी के अनुरूप भावना समूहों को जन्म देती है। जैसे किसी रोग के

कीटाणुओं के संक्रमण-दबाव से पिट्यूटरी ग्रंथि ने कोई हारमोन छोड़ा, इससे शरीर में तेज हलचल मच गई, व्यक्ति को अस्वस्थता महसूस होने लगी और वह खाट पर पड़ गया। अब बीमारी की दशा में तरह-तरह की भावनाएँ जो अचेतन मन में दबी थीं, उभरने लगीं। उनके परिणामस्वरूप अनेक प्रकार की शारीरिक प्रतिक्रियाएँ भी पैदा होने लगती हैं।

मनोमय कोश का निवास मस्तिष्क में बताए जाने का अर्थ केवल इतना ही है कि उसका केंद्रीय कार्यालय वहीं है। उसके सूक्ष्म अवयव उसकी शाखा—प्रशाखाएँ तो संपूर्ण शरीर में व्याप्त-विस्तृत है। मस्तिष्क के जीवाणु अन्य जीवाणुओं से अधिक समझदार और अधिक अनुभवी होते हैं, इसीलिये वे शेष जीवाणुओं के अगुआ नेता कहे जाते हैं। वे जिस दिशा में चलते हैं, शेष जीवाणु भी उसी दिशाधारा में बहने लगते हैं। संपूर्ण सूक्ष्म शरीर को स्वस्थ, प्रसन्न, उल्लसित, प्रगतिशील बनाए रखने के लिए मस्तिष्कीय-स्थिति वैसी होनी जरूरी है। नेता ही निराश-हताश, कुंठित-त्रस्त हुआ, तो प्रगति की क्या आशा की जा सकती है ? नेता का सवेग समस्त अनुयायियों को प्रभावित करता है।

वियना के मनोचिकित्सक डॉ० फैंकल का मत है कि मानसिक-धरातल ही शारीरिक स्वास्थ्य का आधार है। मानसिक संतुलन का कारण जीवन की सार्थकता को समझना है। इसीलिये उन्होंने 'लॉगोथेरेपी' या 'अर्थ-बोध चिकित्सा' नाम की चिकित्सा पद्धति विकसित की है। डॉ० फैंकल की मान्यता है कि जिस व्यक्ति को अपने जीवन और कार्य की सार्थकता का बोध नहीं हो, वह स्वस्थ नहीं रह सकता। मनुष्य जीवन के लक्ष्य और उनकी सिद्धि ही आनंद का आधार है। डा० फैंकल की चिकित्सा पद्धति में रोगी से प्रिय-अप्रिय सभी विषयों पर चर्चा कर उसे जीवन की सार्थकता की तलाश की प्रेरणा दी जाती है। व्यक्ति को जैसे ही जीवन में सार्थकता की अनुभूति हो उठती है, वह अपने भीतर निहित शक्तियों का स्मरण कर आत्मविश्वास से भर उठता है और

धीरे-धीरे स्वस्थ होने लगता है। मनःक्षेत्र की स्वस्थता उसके स्थूल शरीर को भी स्वस्थ बना देती है।

सूक्ष्म शरीर की हलचलों का स्थूल शरीर पर स्पष्ट एवं निश्चित परिणाम होता है। तंत्रकीय रोगों का कारण दबे हुए गंदे विचार ही होते हैं। शरीरशास्त्रियों का भी यह मत है कि मात्र मानसिक चित्रों के आधार पर ही अनेक शारीरिक बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। 'इन्फ्लुएन्स ऑफ द माइंड अपॉन द बॉडी' नामक पुस्तक के लेखक डॉ० टुक ने लिखा है—“विक्षिप्तता, मूढ़ता, अंगों का निकम्मा हो जाना, पित्त, पांडुरोग, केश-पतन, रक्ताल्पता, घबराहट, मूत्राशय के रोग, गर्भाशय में पड़े बच्चे का अंग-भंग हो जाना, चर्मरोग, फुंसियाँ, फोड़े, एग्जिमा आदि अनेक स्वास्थ्यनाशक रोग मात्र मानसिक क्षोभ तथा भावनात्मक उद्वेलन के परिणाम होते हैं।” मानसिक क्षोभ, भावनात्मक उद्वेलन, निषेधात्मक चिंतन, सूक्ष्म शरीर की विकृतियाँ हैं, जिनका स्थूल शरीर पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार परिष्कृत दृष्टिकोण, स्वस्थ-उदात्त चिंतन, आदर्शवादी विचारधारा सूक्ष्म शरीर को तेजस्वी प्रखर बनाती है और उसका श्रेष्ठ प्रभाव स्थूल शरीर पर भी स्पष्ट देखा जा सकता है।

विधेयात्मक विचारों की, ऊर्ध्वमुखी चिंतन की आश्चर्यजनक महत्ता के प्रतिपादन में डॉ० बैनेट ने स्वयं को ही प्रस्तुत किया है। ५० वर्ष की आयु तक डॉ० बैनेट निराशा और अवांछनीय चिंतन के कारण अपना स्वास्थ्य पूरी तरह गँवा बैठे। उन्हें जब ऊर्ध्वगामी चिंतन की इस असीम उपादेयता का पता चला, तो उन्होंने अपना जीवनक्रम ही बदल डाला। मन की जड़ता और विषय-विकारों का जुआ उनसे उतार फेंका, हृदय की श्रद्धा-आस्था से भरा, सदैव प्रसन्न-प्रफुल्ल रहने की आदत बना ली। २० वर्षों के अपने इस जीवन को स्वर्गीय सुख से ओत-प्रोत बनाते हुए डॉ० बैनेट ने अपनी ५० वर्षीय फोटो तथा ७० वर्षीय फोटो भी इसी पुस्तक में छापी है। पहली फोटो में उनका चेहरा झुर्रियों से पिचके गाल, धँसी आँखों के कारण मनहूस दिखाई

देता है जबकि ७० वर्ष की आयु में वे स्वस्थ सशक्त दिखाई देते हैं, झुर्रियाँ न जाने कहाँ चली गईं ? चेहरे में उद्दीप्ति और युवकों जैसी सक्रियता दिखाई देने लगी।

अब तक किये गये ऐसे ही विविध आधुनिक प्रयोगों से स्पष्ट हो गया है कि मन-मस्तिष्क का कष्ट प्रत्येक जीवाणु को कष्ट में डाल देता है। घृणा, ईर्ष्या, क्रोध का अनिष्ट प्रभाव समस्त जीवाणुओं में तुरंत दौड़ जाता है, झलक उठता है। मस्तिष्क में प्रसन्नता का भाव आते ही प्रत्येक जीवाणु प्रसन्न-पुलकित हो उठते हैं। ये सभी जीवाणु परस्पर गहन आत्मीयता और अभिन्नता का भाव रखते हैं। प्रत्येक जीवाणु की दशा से सभी प्रभावित होते हैं। इनका सुख-दुःख मिला-जुला ही होता है। इनका पारस्परिक सौहार्द-सद्भाव अनूठा है। सच्ची मैत्री, प्रगाढ़ आत्मीयता, सहानुभूति के ये अनूठे उदाहरण हैं। कल्पना करें कि एक व्यक्ति को तेज भूख लगी है। सुस्वादु भोजन का थाल सामने है। उसी समय किसी प्रियजन की मृत्यु का तार मिलता है। उसे पढ़ते ही मस्तिष्क में उस प्रियजन की संचित स्मृति सहसा जाग्रत् हो उठती है। मन में आत्मीय संवेदना उमड़ पड़ती है। मस्तिष्क के जीवाणुओं में हल-चल, उथल-पुथल मच जाती है। मस्तिष्क के जीवाणुओं की इस प्रतिक्रिया का तत्काल संपूर्ण शरीर के जीवाणुओं पर प्रभाव पड़ता है। जीभ सूखने लगती है। भूख बढ़ाने वाले जीवाणु जो उछल-कूद मचा रहे थे, चीख-चीखकर भोजन की माँग कर रहे थे, सहमकर शांत, निष्क्रिय दुबके-से बैठ जाते हैं। हृदय और दूसरे अंग भी निष्प्राण से हो चलते हैं। दिल-डूबने लगता है, आँखों के सामने अँधेरा छा जाता है, शरीर निढाल हो जाता है। समस्त अंगों पर यह प्रभाव पड़ता है। स्पष्ट है कि मस्तिष्कीय जीवाणुओं की भावदशा का तत्काल प्रभाव संपूर्ण शरीरस्थ जीवाणु-समूहों पर पड़ता है।

'ओल्ड एज-इट्ज कॉज एंड प्रिवेंशन' नामक पुस्तक में उसके रचयिता सुप्रसिद्ध अमेरिकी वैज्ञानिक तथा लेखक डॉ० बैनेट ने एक बहुत ही मनोरंजक किंतु शिक्षाप्रद घटना दी है। एक

१६ वर्षीय फ्रांसीसी युवती ने एक अमेरिकन नव-युवक से विवाह का निश्चय किया। युवक निर्धन था, सो तय यह हुआ कि पहले वह अमेरिका जाकर धन कमायेगा और लौटकर शादी करेगा। युवक ने ३ वर्ष में पर्याप्त धन कमा लिया, पर दुर्भाग्य से कोई मुकदमा लग जाने के कारण वह १५ वर्ष तक फ्रांस नहीं लौट सका। १५ वर्ष बाद जब वह वापस लौटा, तो यह देखकर आश्चर्यचकित रह गया कि उसकी मंगेतर का स्वस्थ्य-सौंदर्य बिलकुल वैसा ही है जैसा वह १६ वर्ष में था। ३४ वर्ष की अघेड़ हो जाने पर भी उसमें १६ वर्षीय नव-युवती के गुण विद्यमान थे।

घटना का विवेचन करते हुए बैनेट महोदय लिखते हैं—प्रकृति ने मनुष्य शरीर की संचालन प्रक्रिया इस प्रकार रखी है कि शरीर का प्रत्येक कोश (सेल) ८० दिन पीछे पुराना होकर मैल के रूप में उसी प्रकार बाहर निकल जाता है, जिस प्रकार समुद्री लहरों में निरंतर ज्वार-भाटे से समुद्र की गंदगी तटों पर जमा होती रहती है। कोश-परिवर्तन की यह प्रक्रिया आयु बढ़ने के साथ क्षीण होती रहती है, उसी का नाम वृद्धावस्था है, किंतु इस घटना ने इस प्राकृतिक व्यवस्था को उलट दिया, ऐसा क्यों ?

इसका उत्तर युवती के मुँह से दिलवाते हुए श्री बैनेट लिखते हैं कि, "मैं प्रतिदिन प्रातःकाल एक आमदकद शीशे के सम्मुख खड़ी होकर अपना चेहरा देखती और मन-ही-मन अनुभव करती कि मैं ठीक वैसी ही हूँ जैसी कल थी। दिन के परिवर्तन ने मेरे शरीर में कोई प्रभाव नहीं डाला इच्छा शक्ति की यह दृढ़ता मुझे दिन भर पुलकित और प्रसन्न बनाये रखती। उसी का फल है जो मैं जैसी १५ वर्ष पूर्व थी वैसी ही आज भी हूँ।" सूक्ष्म शरीर के शोधन की—विचारों को ऊँचा उठाने की—संकल्प की महत्ता उन्होंने अमेरिका के अध्यात्मपरायण व्यक्ति डॉ० मारडन की पुस्तक "लौह इच्छा शक्ति" (ऐन आइरन बिल) से समझा। जिसमें बताया गया है, "मनुष्य अपने विचार नये कर ले चरित्र को ऊँचा उठा ले, तो अपना शरीर भी बदल सकता है।" यह स्वाध्याय उसके लिए तो औषधि बना ही, सैकड़ों को नया जीवन देने वाला भी है। प्रेम, मैत्री,

दया, करुणा और परोपकारी विचारों की धारण कर कोई भी इनका प्रत्यक्ष लाभ ले सकता है।

खोपड़ी के ऊपर या नीचे की रक्तवाहिनियों की पेशियाँ भावनाओं के अनुसार फैलती-सिकुड़ती व तीव्र संवेदनात्मक प्रतिक्रियाएँ करती हैं।

अस्वस्थ भावनाएँ विभिन्न शारीरिक रोगों का कारण बनती हैं। सामान्य सिर दर्द से लेकर "माईग्रेन" नामक कठिन सिर दर्द भावनात्मक तनाव से होता है। इस तनाव से खोपड़ी की रक्तवाहिनियाँ सिकुड़ती हैं और इससे सिर दर्द शुरू हो जाता है। आज तो यह पाया जाता है कि सिर दर्द की सौ घटनाओं में से पचासी का कारण भावनात्मक तनाव होता है।

भावना-क्षोभ के कारण पेशियों में उत्पन्न तनाव के कारण कई बार लोग भोजन के बाद ऐसा अनुभव करते हैं कि कलेजे पर बोझ जा पड़ा है और भोजन नीचे सरक ही नहीं रहा है। अधिक तनाव होने पर उबकाई आने लगती है, जी मिचलाने लगता है।

भावनात्मक तनाव से उत्पन्न स्नायु रोगों में डकारें आना, पेट में ऐंठन होना, विभिन्न वायु-विकार अनेक त्वचा-विकार, एग्जिमा, खुजली आदि होते हैं।

कमर-दर्द के बारे में अब ऐसा ज्ञात हुआ है कि अधिकांश मामलों में इसका कारण भावनात्मक तनाव ही होता है।

यह जान लेने पर कि भावनात्मक तनावों एवं विकृतियों से ही अधिकांश रोग पैदा होते हैं, यह प्रश्न अनेकों को कचोटता है कि भावनाओं पर नियंत्रण कैसे हो ? इसका एक ही सरल मार्ग है—समझदारी भरे दृष्टिकोण का नित्यप्रति के जीवन में अभ्यास। बिना अभ्यास के यह दृष्टिकोण व्यावहारिक जीवन में नहीं उतरता। जिंदगी को बोझ न मानते हुए, खेल-भावना से जीना, अभ्यास द्वारा ही संभव है। अपनी सीमाओं को पहचानना, शक्ति के सर्वोत्तम उपयोग की व्यवस्था करना—'मैं-मैं की चीख-पुकार' से मुक्त होकर अपने दायित्वों को समझना और निभाना तथा

सृजनात्मक वृत्तियों का जीवन में निरंतर विकास करना ही एकमेव राजमार्ग है।

सामान्यतः कठोरता, क्रोध, बात-बात में लड़ बैठने आदि को हम भ्रांतिवश शक्ति का पर्याय मान बैठते हैं, जबकि मनोवैज्ञानिक इस सबको 'बचकानी हरकतें' मानते हैं। ये दुर्बलता के प्रतीक हैं। शक्तिशाली व्यक्ति विनम्र एवं दृढ़ होता है। क्रोध और झगडालूपन तो शक्तिहीनता की उपज है। सादगी-संयम का अभ्यास ही शक्ति का स्रोत है। किंतु अपनी दुर्बलताओं पर व्यर्थ की खीझ भी लाभकर न होगी। धीरे-धीरे ही कुसंस्कार चित्त-तल पर जमते हैं और धीरे-धीरे ही उनका उन्मूलन संभव है। सतत अभ्यास ही सर्वोत्तम उपचार है। इस बात को सदा ध्यान में रखा जाय कि मन की कुटिलता और अनैतिक कर्म ही रोग का आधार है तथा मन की शुचिता, स्नेह, करुणा और व्यापक मानवीय प्रेम द्वारा इन रोगों को मिटा सकना सरलता से संभव है।

मस्तिष्क की धुलाई-सफाई वैज्ञानिक उपकरणों से भी संभव हो सकती है। फिर अध्यात्म साधना के उपचार तो उससे अधिक ही सशक्त-समर्थ होते हैं। उनका प्रभाव तो और भी अधिक होना चाहिए।

इलेक्ट्रिकल स्टिम्यूलेशन ऑफ ब्रेन (ई० एस० बी०) पद्धति के अनुसार कई एशियन विश्वविद्यालयों ने आंशिक रूप से मस्तिष्क की धुलाई (ब्रेन वाशिंग) में सफलता प्राप्त कर ली है। यह अभी बंदर, कुत्ते, बिल्ली, खरगोश, चूहे जैसे छोटे स्तर के जीवों पर ही प्रयोग किये गये हैं। आहार की रुचि, शत्रुता, मित्रता, भय, आक्रमण आदि के सामान्य स्वभाव को जिस प्रकार चरितार्थ किया जाना चाहिए उसे वे बिलकुल भूल जाते हैं और विचित्र प्रकार का आचरण करते हैं। बिल्ली के सामने एक चूहा छोड़ा गया, तो वह आक्रमण करना तो दूर, उससे डरकर एक कोने में जा छिपीं। क्षणभर में एक-दूसरे पर खूनी आक्रमण करना, एक आध मिनट बाद परस्पर लिपटकर प्यार करना यह परिवर्तन उस विद्युत् क्रिया से होता है, जो उनके मस्तिष्कीय

कोशों के साथ संबद्ध रहती हैं। यही बात मनुष्यों पर भी लागू हो सकती है। मानव मस्तिष्क अपेक्षाकृत अधिक परिष्कृत होता है उसमें प्रतिरोधक शक्ति भी अधिक होती है, इसलिए उनमें हेर-फेर करने के लिए प्रयास भी कुछ अधिक करने पड़ेंगे और पूर्ण सफलता प्राप्त करने में देरी भी लगेगी, पर जो सिद्धांत स्पष्ट हो गये हैं, उनके आधार पर यह निश्चित हो गया है कि मनुष्य को भी—जैसा चाहे सोचने, मान्यता बनाने और गतिविधियाँ अपनाने के लिए विवश किया जा सकता है।

मनोमय कोश की साधना मस्तिष्कीय क्षेत्र की धुलाई-सफाई ही नहीं करती, वरन् उसे समुन्नत, सुमज्जित एवं सुसंस्कृत बनाने का काम भी बहुत हद तक पूरा कर सकती हैं।

मनोमय कोश शरीर और मस्तिष्क के समूचे क्षेत्र को अपने आँचल में समेटे हुए हैं। वह दोनों क्षेत्रों को प्रभावित करता है। अंतःकरण में अस्त-व्यस्त और विकृत स्थिति में बने रहने पर उसकी प्रतिक्रिया शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर विनाशकारी प्रभाव डालती है। व्यक्तित्व लड़खड़ा जाने पर दृष्टिकोण और व्यवहार दोनों ही गड़बड़ाते हैं। फलतः गतिविधियाँ अवांछनीयता से भर जाती हैं। स्पष्ट है कि ऐसी स्थिति में विपत्तियाँ ही उत्पन्न होंगी। अवरोध ही खड़े होंगे। कलह और संकट आक्रमण करेंगे। समूचा जीवन ही नरक बन जायेगा। इस नारकीय यंत्रणा से छुटकारा कोई और नहीं दिला सकता, क्योंकि इस विपत्ति का दोष भले ही किसी पर थोपा जा सके परंतु उसका कारण अपना आपा ही होता है। मनःस्थिति के अनुरूप परिस्थिति बनने का तथ्य इतना स्पष्ट है कि उसे झुटलाये जाने की कहीं कोई गुँजाइश नहीं है। अपने आप में परिवर्तन किए बिना हम इस नरक से अन्य किसी तरह उबर नहीं सकते। जीवनक्रम में उत्पन्न विविध विध अवरोधों से छुटकारा पाए बिना हमारा उद्धार हो नहीं सकता। समस्याओं और विभिन्नताओं से त्राण मिल नहीं सकता।

प्रवीणता, पारंगतता, सफलता जैसी अनेकों उत्साहवर्धक विभूतियाँ इस मनोमय कोश की साधना के ही वरदान हैं। कभी कभी किन्हीं विशेष व्यक्तियों में विलक्षण मानसिक विशेषताएँ पाई जाती हैं। किन्हीं की स्मरण शक्ति इतनी विकसित होती है कि सामान्य लोगों की उनसे तुलना करने पर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। किन्हीं में कला कौशल की पारंगतता आरंभिक जीवन में ही पाई जाती है, जिनके कारण वे एक आश्चर्य की तरह दर्शनीय और ख्याति प्राप्त बन जाते हैं। इन अद्भुत घटनाओं के मूल रहस्य इतना ही होता है कि उनका मनोमय कोश किन्हीं अंशों तक जाग्रत् हो उठता है। पूर्व जन्मों की उपलब्धियाँ ही ऐसे कारणों में प्रधान भूमिका निभा रही होती है। मनुष्य पिछले जन्म के असंख्य संस्कार अपने साथ लेकर आता है। उन्हीं में मनोमय कोश का विकास होना भी एक हो सकता है।

इन अद्भुत घटनाओं के मूल में रहस्य इतना ही होता है कि उनका मानसिक बिखराव संयोगवश एकाग्र बन गया होता है। संयोग भी एक नियम विशेष के आधार पर बनते हैं। पूर्व जन्मों की उपलब्धियाँ ही ऐसे कारणों में प्रधान भूमिका निभा रही होती है। मनुष्य पिछले जन्म के असंख्य संस्कार अपने साथ लेकर आता है। उन्हीं में एक मस्तिष्कीय विकास का होना भी एक हो सकता है। यह विकास, मात्र उस शिक्षण पर निर्भर नहीं, जो स्कूलों में या समीपवर्ती लोगों से मिलता है। वह जानकारी बढ़ाना मात्र है। बलिष्ठ मस्तिष्कों की विद्युत् शक्ति का प्रवाह यदि दुर्बल मस्तिष्कों की ओर मुड़ जाय तो उनकी तीक्ष्णता में भारी परिवर्तन हो सकता है और उसका परिचय विशेष प्रोटीनों की मात्रा की वृद्धि के रूप में सहज ही देखा जा सकता है। मस्तिष्कीय पोषण के लिए सुविकसित चेतना संपन्न मनस्वी लोगों का सान्निध्य अत्यंत उपयोगी है, उनकी बढी-चढी प्राण शक्ति दुर्बल, भययुक्त चेतना की अभाव पूर्ति कर सकती है। प्रयोगशालाओं में मामूली बिजली को कुछ विशेष कोष्ठकों में पहुँचाकर प्राणियों की प्रकृति कुछ समय के लिए बदलना संभव हो सकता है प्रतिभाशाली लोगों का प्राण—दुर्बल

मनःस्थिति को बदलने में स्थायी उपचार का प्रयोजन पूरा कर सकता है।

येल निवासी मस्तिष्क विज्ञानी डॉ० जोजे डेलगॉडो ने अपने प्रयोगों से यह सिद्ध कर दिया है कि मस्तिष्क में बाहर से बिजली पहुँचाकर उस कार्यरत केंद्रों को उद्दीप्त एवं प्रसुप्त किया जा सकता है, तदनुसार उस प्राणी को इच्छित कार्य कराने और आज्ञा पालन के लिए विवश किया जा सकता है।

डॉ० जोजे ने अपने प्रयोगों की सार्वजनिक प्रदर्शनी करके दर्शकों को आश्चर्यचकित कर दिया। उनके हाथ में एक विद्युत् संचालक था और कुछ प्राणियों की खोपड़ी पर अमुक स्थान एवं अमुक संख्या में इलेक्ट्रोड लगा रखे गये थे। इस प्रकार यंत्र और प्राणी के बीच रेडियो संपर्क स्थापित हुआ। प्रेरित सूचनाओं के अनुसार प्राणी ऐसे काम करने लगे, जो उनकी सामान्य प्रवृत्ति के विपरीत थे। नम्र प्राणी उद्धत हो उठे और उद्धत प्रकृति वाले पूर्ण शांत होकर एक कोने में जा बैठे। साँड़, बंदर, कुत्ते, चूहे, बिल्ली आदि प्राणियों ने इस विद्युत् संचार प्रणाली से प्रभावित होकर वे काम किये जिसकी आशा-प्रदर्शन में उपस्थित जनता ने कभी भी नहीं की थी।

मनुष्यों पर भी यह प्रयोग किये गये हैं और उनकी इच्छा शक्ति, ज्ञानशक्ति एवं क्रियाशक्ति पर नियंत्रण करके अमुक प्रकार से सोचने और अमुक प्रकार के काम करने को उन्हें विवश कर दिया गया है।

स्मरण शक्ति की विलक्षणता कई व्यक्तियों में इतनी अधिक मात्रा में विकसित पाई जाती है कि आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है लिथुयानिया का रैवी एलिजा नामक व्यक्ति दो हजार पुस्तक कंटाग्र रखने के लिए प्रसिद्ध था। कितनी ही बार उलट-पुलटकर उसकी परीक्षा ली गई और वह सदा खरा उतरा। फ्रांस का राजनेता लिआन गैस्वाटा की विक्टर ह्यूगो की रचनाएँ बहुत पसंद थीं। उनमें से उसने हजारों संदर्भ के पृष्ठ याद कर रक्खे थे और

उन्हें आवश्यकतानुसार धड़ल्ले के साथ घंटों दुहराता रहता था। उसमें एक भी शब्द आगे-पीछे नहीं होता था। पृष्ठ संख्या तक वह सही-सही बताता चलता था।

ग्रीक विद्वान् रिचार्ड पोरसन को भी पढ़ी हुई पुस्तकें महीनों याद रहती थीं। जो उनसे आज पढ़ा है उसे एक महीने तक कभी भी पूछा जा सकता था और वे उसे ऐसे सुनाते थे मानो अभी-अभी रटकर आये हों। शतरंज के जादूगर नाम से प्रख्यात अमेरिकी नागरिक हैरी नेलसन पिल्सबरी एक साथ बीस शतरंज खिलाड़ियों की चाल को स्मरण रखकर उनका मार्गदर्शन करता था। यह सब काम पूरी मुस्तैदी और फुर्ती से चलता था। बीसों खिलाड़ी उसका मार्गदर्शन पाते और खेल की तेजी बनाए रखते थे। जर्मनी का लायब्रेरियन मैथुरिन बेसिरे दूसरों के कहे शब्दों की हूबहू पुनरावृत्ति कर देता था। जिन भाषाओं का उसे ज्ञान नहीं था, उसमें वार्तालाप करने वालों के समान बिना चूक नकल उतार देने की उसमें अद्भुत शक्ति थी। एक बार बारह भाषा-भाषी लोगों ने अपनी बोली में साथियों से वार्तालाप किये। मैथुरिन ने क्रमशः बारहों के वार्तालाप को यथावत् दुहराकर सुना दिया। बरमान्स का आठ वर्षीय बालक जेरा कोलबर्न गणित के अति कठिन प्रश्न को बिना कागज-कलम का सहारा लिए मौखिक रूप से हल कर देता था। लंदन के गणितज्ञों के सम्मुख उसने अपनी अद्भुत प्रतिभा का प्रदर्शन करके सबको चकित कर दिया था। हंबर्ग निवासी जान मार्टिन डेस भी अति कठिन गणित के प्रश्नों को मौखिक रूप से हल करने में प्रसिद्ध था। उन दिनों उसके दिमाग की गणित क्षमता इतनी बढ़ी-चढ़ी थी कि आज के गणित कंप्यूटर भी उससे प्रतिस्पर्द्धा नहीं कर सकते थे।

मस्तिष्क की अनोखी हलचलों का विश्लेषण अणु जैविकी—मॉलीक्यूलर बायोलॉजी के आधार पर करते हुए स्वीडन की गोटनबर्ग यूनिवर्सिटी के जीव विज्ञानी होल्गर हाइडेन इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि मस्तिष्क को दक्ष बनाने वाले शिक्षण एवं चिंतन कार्य कोशिकाओं में महत्त्वपूर्ण रासायनिक पदार्थों की मात्रा

बढ़ा देते हैं और वे अधिक संवेदनशील बनकर बुद्धिमत्ता का क्षेत्र विस्तार करते हैं।

इससे सिद्ध होता है कि मस्तिष्कीय क्षमताओं को विकसित करने की प्रक्रिया न केवल अपने ही बौद्धिक संस्थान को परिष्कृत करती है, वरन् उससे दूसरों को भी प्रभावित किया जा सकता है। प्रतिभा इसी का नाम है। बुद्धिमत्ता और प्रतिभा दोनों को मानसिक दक्षता का ही एक अंग कह सकते हैं। यह दक्षता जन्मजात रूप में—पूर्व संचित संपदा के रूप में अनायास उपलब्ध भी दिख सकती है और उसे साधनात्मक प्रयत्नों द्वारा योजनाबद्ध रूप से बढ़ाया भी जा सकता है। मनोमय कोश के परिष्कार की साधना अपनाकर क्रमशः इसी क्षेत्र में पदार्पण करना संभव होता है।

संयुक्त राष्ट्र संघ में एक ऐसे भाषा अनुवादक थे, जो एक ही समय में चार भाषाओं का अनुवाद अपने मस्तिष्क में जमा लेते थे और चार स्टेनोग्राफर बिठाकर उन्हें नोट कराते चले जाते थे।

दार्शनिक जेरमी बेंथम जब चार वर्ष के थे, तभी लैटिन और ग्रीक भाषाएँ ठीक तरह बोलने लगे थे। जर्मनी के गणितज्ञ जावारियस ने एक बार २०० अंकों वाली लंबी संख्या का गुणा मन ही मन करके लोगों को अचंभे में डाल दिया था। अमेरिका के एक गैरिज-कर्मचारी को सैकड़ों मोटरों के नंबर जुबानी याद थे और वह उनकी शकल देखते-देखते ही पुरानी मरम्मत की बात भली प्रकार याद कर लेता था।

जान फ्रांसिस कोलंबिया विश्वविद्यालय में जब प्राकृतिक इतिहास का प्रोफेसर नियुक्त हुआ, तब उसकी आयु, मात्र १६ वर्ष की थी।

आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय ने एक चार वर्षीया बालिका बेबेल थांपसन के गणित अध्ययन के लिए अतिरिक्त प्रबंध किया है। यह बालिका इतनी छोटी आयु में ही अंकगणित, त्रिकोणमिति और प्रारंभिक भौतिकशास्त्र में असाधारण गति रखती है। एक बालिका

को, जिसने प्रारंभिक पढ़ाई क्रमबद्ध रीति से नहीं पढ़ी, आगे पढ़ाया जाय ? इसका निर्धारण करने के लिए शिक्षाशास्त्रियों का एक विशेष पैनल काम कर रहा है।

मद्रास संगीत अकादमी न्यास की ओर से रवि किरण उम्र ढाई वर्ष के बालक को उसकी अद्भुत संगीत प्रतिभा के उपलक्ष्य में विशेष छात्रवृत्ति देने की घोषणा की गई है। यह बालक न केवल कई वाद्य-यंत्रों का ठीक तरह बजाना जानता है, वरन दूसरों द्वारा गलत बजाए जाने पर उस गलती को बताता भी है।

जापान निवासी हनावा होकाइशी सन् १७२२ में जन्मा और पूरे १०१ वर्ष जीकर १८२३ के मरा। वह सात वर्ष की आयु में अंधा हो गया था। पर इससे क्या, उसने बिना नेत्रों के ही दूसरों से सुनकर अपनी ज्ञानवृद्धि आरंभ कर दी। जो सुना, उसे पूरे मनोयोग के साथ सुना और ध्यान में रखा। फलस्वरूप उसके ज्ञान का कोश इतना बढ़ गया कि उसे एक अद्भुत आश्चर्य माना जाता था। उसके द्वारा नोट कराये गये ज्ञान-भंडार को जापान में २८२० खंडों के एक अनुपम विशाल ग्रंथ के रूप में छापा गया है। यह अब तक का संसार का सबसे बड़ा ग्रंथ है।

वरमांट निवासी आठ वर्षीय बालक जेरा कोलबर्न ने बिना गणित का क्रमबद्ध अध्ययन किये और बिना कागज-कलम की सहायता के दिमागी आधार पर, कठिन प्रश्नों के उत्तर देने की जो क्षमता दिखाई, उससे बड़े-बड़े गणितज्ञ चकित रह गये। जिन कठिन सवालों को केवल अच्छे गणितज्ञ ही काफी समय लगाकर हल कर सकते थे, उसने उन्हें बिना हिचके आनन-फानन में कैसे हल कर दिया। इसे देखकर सब लोग दंग रह जाते थे। आश्चर्य यह था कि पुस्तकीय आधार पर उसे गणित के सामान्य नियम भी ज्ञात न थे।

गणितशास्त्री जेडिया वाक्सटन बहुत समय से एक गणित समस्या में उलझे हुए थे, हल निकल नहीं रहा था। एक दिन उनकी भेंट स्मरण शक्ति के धनी व्यक्ति जॉन मार्टिन डेस से

हुई। उसने उनका हल मिनटों में बता दिया गणित संबंधी उलझनों को सुलझाने के लिए डेस अपने समय में दूर-दूर तक प्रख्यात थे।

सर जॉन फील्डिंग इंग्लैंड के जज थे। वे अंधे थे, पर उनके कान इतने सक्षम थे कि अपने जीवन काल में जिन ३००० अपराधियों से उनका वास्ता पड़ा था, उन सबकी आवाज वे ठीक तरह पहचान सकते थे और उनका नाम बता सकते थे। मुकदमों के मुद्दतों बाद वे लोग कभी उनसे मिलने आते, तो नेत्र न रहने पर भी केवल स्मरण शक्ति के आधार पर उसका नाम और मुकदमों के संदर्भ बता देते थे। उनकी यह अद्भुत स्मरण शक्ति चिरकाल तक चर्चा का विषय बनी रही।

फ्रांसिस्को मैरिया गेरिबाल्डी नामक एक प्रसिद्ध कवि चौदहवीं शताब्दी के अंत में हुआ। वह इटली का निवासी था। उसकी विलक्षण प्रतिभा यह थी कि दोनों हाथों से कविताएँ एक साथ लिखता जाता था। इनमें एक लैटिन भाषा में होती और दूसरी पुरातन ग्रीक भाषा में।

कैंटरबरी के प्रधान पादरी टामस फ्रेकर ने तीन महीने में पूरी बाइबिल जबानी याद कर डालने का एक अनोखा उदाहरण प्रस्तुत किया। सन् १७२४ में जन्मा और १८१२ में मरा। स्काटलैंड का प्रख्यात कवि डंकन मेक इंटायर, उन दिनों अपनी कविताओं के लिए अपने देश ही नहीं सारे यूरोप में प्रसिद्ध था। पर वह न पढ़ना जानता था, न लिखना। अपनी सारी प्रतिभा उसने सुन-समझकर ही विकसित की थी।

ग्रीक फोरसन नामक व्यक्ति को मिल्टन की प्रायः सभी रचनाएँ याद थीं और उन्हें सीधी ही नहीं उलट करके भी सुना सकता था।

लाक्रोज ने अपनी स्मरण शक्ति का एक अनोखा प्रदर्शन करके दर्शकों को चकित कर दिया। उसने अपरिचित १२ भाषाओं

की १२ कविताएँ सुनीं और दूसरे ही क्षण उसने उन्हें ज्यों-का-त्यों दुहरा दिया।

म्यूनिख की राष्ट्रीय लाइब्रेरी के संचालक जोसेफ बर्नहार्ड डंकन अद्भुत प्रतिभासंपन्न थे। उन्होंने ६ भाषाएँ सीखी ही नहीं थी, उनमें पारंगत भी बने थे। इसके अतिरिक्त उनकी उस विशेषता को देखकर दंग रह जाना पड़ता था। जबकि वे ६ भाषाओं के अपने स्टेनोग्राफरों को एक साथ बिठाकर उन सभी को उन्हीं की भाषा में लेख नोट कराते थे। मस्तिष्कीय अथाह ज्ञान और विकसित स्मरण शक्ति का प्रमाण कदाचित् ही कहीं कभी देखने को मिलता है।

५ अक्टूबर, १९५० को लंदन में एक भारतीय महिला शकुंतला देवी, जिन्हें गणित की जादूगरनी (विजॉर्ड ऑफ मैथेमेटिक) कहा जाता है, टेलीविजन पर अपना कार्यक्रम प्रस्तुत कर रही थीं। तभी एक सज्जन ने उन्हें एक गणित का प्रश्न हल करने को कहा। बिना एक क्षण का विलंब किए हुए उन्होंने कहा, यह प्रश्न गलत है। यह प्रश्न ब्रिटेन के बड़े-बड़े गणिताचार्यों ने तैयार किया था, इसीलिए सब लोग एकदम आश्चर्य में डूब गये प्रश्न गलत कैसे हो सकता है ? बी० बी० सी० कार्यक्रम के आयोजनकर्ता ने प्रश्न की जाँच कराई, तो विस्मित रह गया कि प्रश्न सचमुच गलत है। उसने भी यह माना कि "हम जितना समझ पाए हैं, मन की शक्ति और सामर्थ्य उससे बहुत अधिक है।"

सिडनी (आस्ट्रेलिया) स्थित न्यू साउथ वेल्स विश्वविद्यालय में उनकी प्रतिद्वंद्विता २० हजार पाँड मूल्य के संगणक (कंप्यूटर) से हुई। यह कंप्यूटर विद्युत् चालित था और उसका आंपरेशन प्रसिद्ध गणितज्ञ श्री आर० जी० स्मार्ट और बेरी थार्नटन कर रहे थे, किंतु जब भी कोई प्रश्न पूछा जाता था, शकुंतला उसका तुरंत उत्तर दे देती थीं, जबकि मशीन के उत्तर की प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। शकुंतला के उत्तर शत-प्रतिशत सही पाकर वे सब चौंक पड़े।

मन की अद्भुत शक्ति के संदर्भ में वैज्ञानिकों ने अनेक तरह के शोध किए हैं और उन्हें मनोविज्ञान अनुसंधान समिति द्वारा "दि ह्यूमन परसनैलिटी एंड इट्स सरवाइवल ऑफ बॉडिली डैथ" नामक शोध ग्रंथ में विधिवत् प्रकाशित भी किया गया है। उपरोक्त पुस्तक में ऐसे छोटे बच्चों के अनेक उद्धरण भी दिये गए हैं जो गणित संगीत, ज्यामिति चित्रकला आदि में इतने पारंगत थे कि उस विषय के प्राध्यापक भी उतने निष्णात नहीं होते। जगद्गुरु शंकराचार्य ने अपनी ऐसी ही विलक्षण प्रतिभा से अपने गुरु को स्तंभित कर दिया था। बिना शिक्षा व्यवस्था के पाँच-छह वर्ष जितनी छोटी आयु में ही इस प्रकार का असाधारण ज्ञान होना, इसी एक आधार पर संभव होता है कि किसी आत्मा की अपने पूर्व जन्म की संचित ज्ञान सामग्री उपलब्ध हो। पूर्व जन्म की सिद्धि आत्मा के स्वतंत्र अस्तित्व का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

२०० वर्ष पूर्व जर्मनी में हानरिस हानेन्केन नामक बच्चे का जन्म हुआ। जब बालक तीन वर्ष का था, तभी उसे हजारों लैटिन मुहावरे कंठस्थ थे। जोड़, बाकी, गुणा, भाग वह बड़ी आसानी से कर लेता। इसी आयु में उसने फ्रेंच भाषा और भूगोल पढ़ने की भी इच्छा की। 'साइबरनेटिक्स' के रचयिता 'वीनर' ५ वर्ष के थे, तभी १८ वर्ष के विद्यार्थियों के साथ विज्ञान में रुचि लेने लगे थे। गेटे ६ वर्ष की आयु में कविताएँ लिखने लगे थे। बायरन, स्काट तथा विकासवाद सिद्धांत के जन्मदाता डार्विन भी ऐसी ही विलक्षण क्षमताओं के बच्चे थे पास्कल की प्रथम विज्ञान रचना १५ वर्ष की आयु में ही प्रकाशित हो गई थी, जिसमें उसने १०० से अधिक प्रमेय सिद्ध किये थे।

अमेरिका के भौतिक शास्त्री डा० स्टीवेंसन ने ६०० ऐसी घटनाएँ एकत्रित की हैं, जिनमें किन्हीं व्यक्तियों—विशेषकर १४ वर्ष की आयु तक के बालकों द्वारा बताये गये उनके पूर्व जन्मों के अनुभव प्रामाणिक सिद्ध हुए हैं, १७० प्रमाण अकेले भारत के हैं।

जर्मनी का विलक्षण प्रतिभासंपन्न तीन वर्ष का बालक हामेन केन' मस्तिष्क विद्या के शोधकर्त्ताओं का केंद्र रहा है। यह बालक ३ वर्ष की आयु में जर्मन के उच्च साहित्यक ग्रंथ न केवल पढ़ लेता था, अपितु उनका विश्लेषण भी कर लेता था।

साधना से सिद्धि का सिद्धांत हर क्षेत्र में काम करता है। श्रम का पुरस्कार मिलने की बात सर्वविदित है। पुरुषार्थ का प्रतिफल प्राप्त होने के सिद्धांत को सुनिश्चित तथ्य मानकर ही संसार के विविध क्रिया-कलाप चल रहे हैं। अध्यात्म साधना के संबंध में भी यही बात है। यदि वह तथ्यों पर आधारित हो और विधिवत् संपन्न की जाय, तो उसके लाभ मिलना भी सुनिश्चित है।

मनोमय कोश को जाग्रत-परिष्कृत करने के प्रयत्नों में ध्यान एकाग्रता को प्रमुखता दी गई है। जिससे संकल्प बल प्रचंड हो, लक्ष्य विशेष पर उसका नियोजन हो सके। इस आधार पर मस्तिष्क संस्थान को विकसित करने, व्यक्तित्व में चमत्कारी प्रतिभाओं को जगाने जैसे अनेकों लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं।



प्राणमय कोश में निहित प्रचंड जीवनी शक्ति

भारतीय तत्त्वदर्शन के अनुसार मनुष्य की स्थूल काया में व्याप्त उसी के अनुरूप एक प्राण शरीर भी होता है। प्राण शरीर—शरीरस्थ प्राण संस्थान को, योगियों ने प्राणमय कोश कहा है। न केवल इसके अस्तित्व का वरन् इसके क्रिया-कलापों, गुण-धर्मों तथा प्रभावों आदि विशेषताओं का वर्णन भी भारतीय ग्रंथों में विस्तार से मिलता है। इस मान्यता को स्थूल विज्ञान बहुत दिनों से झुठलाता रहा, किंतु जैसे-जैसे शरीर विज्ञान के संदर्भ में जानकारीयाँ बढ़ती जा रही हैं, वैसे-वैसे प्राण संस्थान के प्राणमय कोश के अस्तित्व को एक सुनिश्चित तथ्य के रूप में स्वीकार किया जाने लगा है।

अब इस सूक्ष्म सत्ता के प्रभाव भौतिक विज्ञान के स्थूल उपकरणों की पकड़ में भी आने लगे हैं। इसके इलेक्ट्रानिक विज्ञानवेत्ता ऐमयोन किल्डियान ने एक ऐसी फोटोग्राफी का आविष्कार किया जो मनुष्य के इर्द-गिर्द होने वाली विद्युतीय हलचलों का भी छायांकन करती है। इससे प्रतीत होता है कि स्थूल शरीर के साथ-साथ सूक्ष्म शरीर की भी सत्ता विद्यमान है और वह ऐसे पदार्थों से बनी है, जो इलेक्ट्रानों से बने ठोस पदार्थ की अपेक्षा भिन्न स्तर की है और अधिक गतिशील भी।

इंग्लैंड के डॉ० किलनर एक बार अस्पताल में रोगियों का परीक्षण कर रहे थे। एक मरणासन्न रोगी की जाँच करते समय उन्होंने देखा कि उनकी दूरबीन (माइक्रोस्कोप) के शीशे पर एक विचित्र प्रकार के रंगीन प्रकाश कण जम गये हैं जो आज तक कभी भी देखे नहीं गये थे। दूसरे दिन उसी रोगी के कपड़े उतरवा कर जाँच करते समय डॉ० किलनर फिर चौंके, उन्होंने देखा जो

प्रकाश कण दिखाई दिया था, आज वह लहरों के रूप में माइक्रोस्कोप के शीशे के सामने उड़ रहा है। रोगी के शरीर के चारों ओर छह-सात इंच परिधि में यह प्रकाश फैला है, उसमें कई दुर्लभ रासायनिक तत्वों के प्रकाश कण भी थे। उन्होंने देखा जब प्रकाश मंद पड़ता है, तब तक उसके शरीर और नाड़ी की गति में शिथिलता आ जाती है। थोड़ी देर बाद एकाएक प्रकाश पुंज विलुप्त हो गया। अबकी बार जब उन्होंने नाड़ी पर हाथ रखा, तो पाया कि उसकी मृत्यु हो गई। इस घटना को कई पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कराने के साथ-साथ डॉ० किलनर ने विश्वास व्यक्त किया कि जिस द्रव्य में जीवन के मौलिक गुण विद्यमान होते हैं, वह पदार्थ से प्रथम अति सूक्ष्म सत्ता है। उसका विनाश होता तो ऐसा संभव नहीं है।

प्राणतत्त्व को एक चेतन ऊर्जा (लाइव एनर्जी) कहा गया है। भौतिक विज्ञान के अनुसार एनर्जी के छह प्रकार माने जाते हैं— १. ताप (हीट) २. प्रकाश (लाइट) ३. चुंबक (मैग्नेट) ४. विद्युत् (इलेक्ट्रिसिटी) ५. ध्वनि (साउंड) ६. घर्षण (फ्रिक्शन) अथवा यांत्रिक (मैकेनिकल)। इस प्रकार की एनर्जी को किसी भी दूसरे प्रकार की एनर्जी में बदला भी जा सकता है। शरीरस्थ चेतना क्षमता—लाइव एनर्जी, इन विज्ञानसम्मत प्रकारों से भिन्न होते हुए भी उनके माध्यम से जानी-समझी जा सकती है।

एनर्जी के बारे में वैज्ञानिक मान्यता है कि वह नष्ट नहीं होती, बल्कि उसका केवल रूपांतरण होता है। यह भी माना जाता है कि एनर्जी किसी भी स्थूल पदार्थ से संबद्ध रह सकती है, फिर भी उसका अस्तित्व उससे भिन्न है और वह एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ में स्थानांतरित (ट्रांसफर) की जा सकती है। प्राण के संदर्भ में भी भारतीय द्रष्टाओं का यही कथन है। अब तो पाश्चात्य वैज्ञानिक भी इसे स्वीकार करने लगे हैं।

इस संदर्भ में फोनोग्राम, प्रकाश के बल्ब के आविष्कर्ता टामस एडिसन ने अत्यन्त बोधगम्य प्रकाश डालते हुए लिखा है—“प्राणी की सत्ता उच्चस्तरीय विद्युत्-कण गुच्छकों के रूप में तब भी बनी

रहती है, जब वह शरीर से पृथक् हो जाती है। मृत्यु के उपरांत ये गुच्छक विधिवत् तो नहीं होते, पर वे परस्पर संबद्ध बने रहते हैं। ये बिखरते नहीं, वरन् आकाश में भ्रमण करते रहने के उपरांत पुनः जीवन चक्र में प्रवेश करते और नया जन्म धारण करते हैं। इनकी बनावट बहुत कुछ मधुमक्खी के छत्ते की तरह होती है। पुराना छत्ता वे एक साथ छोड़ती हैं और नया एक साथ बनाती हैं। इसी प्रकार उच्चस्तरीय विद्युत्-कणों के गुच्छक अपने साथ स्थूल शरीर की सामग्री तथा अपनी आस्थाओं और संवेदनाओं को साथ लेकर जन्मने-मरने पर भी अमर बने रहते हैं।

इन प्रमाणों से शरीर में अन्नमय कोश से संबद्ध किंतु एक स्वतंत्र अस्तित्व संपन्न प्राणमय कोश का होना स्वीकार करना ही पड़ता है। यों भी शरीर में विज्ञानसम्मत ताप आदि छहों प्रकार की एनर्जी (ऊर्जा) के प्रमाण पाए जाते हैं, किंतु सारे शरीर में संव्याप्त प्राणमय कोश का स्वरूप सबसे अधिक स्पष्टता से जैवीय विद्युत् (बायो इलेक्ट्रिसिटी) के रूप में समझा जा सकता है।

शरीर विज्ञान में अब कायिक विद्युत् पर पर्याप्त शोधें हो रही हैं। शरीर में कुछ केंद्र तो निर्विवाद रूप से विद्युत् उत्पादक केंद्रों के रूप में स्वीकार कर लिए गये हैं। उनमें प्रधान है—मस्तिष्क, हृदय तथा नेत्र। मस्तिष्क में विद्युत् उत्पादन केंद्र को वैज्ञानिक 'रेटिकुलर एक्टिवेटिंग सिस्टम' कहते हैं। मस्तिष्क के मध्य भाग की गहराइयों में स्थित कुछ मस्तिष्कीय अवयवों में से विद्युत् स्पंदन (इलेक्ट्रिक इंपल्स) पैदा होते रहते हैं तथा सारे मस्तिष्क में फैलते जाते हैं। यह विद्युतीय आवेश ही मस्तिष्क से विभिन्न केंद्रों को संचालित तथा परस्पर संबंधित रखते हैं। चिकित्सा विज्ञान में प्रयुक्त मस्तिष्कीय विद्युत मापक यंत्र (इलेक्ट्रो एन्सेफेलोग्राफ) ई० ई० जी० द्वारा मस्तिष्कीय विद्युत् धाराओं को नापा जाता है। उन्हीं के आधार पर मस्तिष्क एवं सिर से संबंधित रोगों के बारे में निर्धारण किया जाता है सिर में विभिन्न स्थानों पर यंत्र के रज्जु (कार्ड) लगाये जाते हैं। उनसे नापे गये विद्युत् विभव (पोटेशल) का योग लगभग १ मिली वोल्ट आता है।

हृदय के संचालन में लगभग २० तार शक्ति (माइक्रोबोल्ट) विद्युत् की आवश्यकता पड़ती है। यह विद्युत् हृदय में ही पैदा होती है। हृदय में जिस क्षेत्र से विद्युत् स्पंदन पैदा होते हैं, उसे 'पेस मेकर' कहते हैं। यह विद्युत् स्पंदन पैदा होते ही लगभग ०.८ सेकंड में एक विकसित मनुष्य के सारे हृदय में फैल जाते हैं। इतने ही समय में हृदय अपनी धड़कन पूरी करता है। हृदय की धड़कन तथा नियंत्रण के कारण यही विद्युत् स्पंदन होते हैं। इन विद्युत् स्पंदनों का प्रभाव ई० सी० जी० (इलेक्ट्रो कार्डियोग्राफ) नामक यंत्र पर अंकित होते हैं। हृदय रोगों के निर्धारण के लिए इन विद्युत् स्पंदनों को ही आधार मानकर चला जाता है।

नेत्रों में भी वैज्ञानिकों के मतानुसार फोटो इलेक्ट्रिक सेल जैसी व्यवस्था है। फोटो इलेक्ट्रिक सेल की विशेषता यह होती है कि वह प्रकाश को विद्युत् तरंगों में बदल देता है। नेत्रों में भी इसी पद्धति से विद्युत् उत्पादन की क्षमता वैज्ञानिक स्वीकार करते हैं। नेत्र रोगों के निर्धारण, वर्गीकरण के लिये नेत्रों में उत्पन्न विद्युत् स्पंदनों को ई० आर० जी० (इलेक्ट्रो रेटिनोग्राफ) यंत्र पर अंकित किया जाता है।

इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि शरीरस्थ कुछ केंद्रों में विद्युतीय स्पंदनों के उत्पादन के साथ-साथ सारे शरीर में उनका संचार भी होता है। ई० ई० जी० द्वारा सिर के हर हिस्से में मस्तिष्कीय विद्युत् के स्पंदन रिकॉर्ड किये जाते हैं। यही नहीं बहुत बार तो उनका प्रभाव गर्दन से नीचे वाले अवयवों में भी स्पष्टता से मिलता है। हृदय की विद्युत् का प्रभाव तो ई० सी० जी० यंत्र द्वारा पैर के टखनों तक पर रिकॉर्ड किया जाता है। हृदय के निकटतम तथा दूरतम सभी अंगों में यह स्पंदन समान रूप से शक्तिशाली पाए जाते हैं।

शरीरस्थ प्राण प्रवाह के माध्यम से रोगों के निदान पर चिकित्साशास्त्रियों का विश्वास दृढ़ हो गया है मांस-पेशियों की निष्क्रियता तथा स्नायु संस्थान के रोगों में भी प्राणांकन पद्धति प्रयुक्त की जाती है। इसके लिए ई० एम० जी० (इलेक्ट्रो मायो

ग्राफ) का प्रयोग होता है। शरीर के हर क्षेत्र के स्नायुओं अथवा मांस-पेशियों में विद्युतीय ऊर्जा की उपस्थिति तथा सक्रियता का यह स्पष्ट प्रमाण है। यहाँ तक कि शरीर की त्वचा जैसी पतली पर्त में भी उसकी अपने ढंग की विद्युत् विद्यमान है। चिकित्साशास्त्री त्वचा के परीक्षण में भी त्वक् विद्युतीय प्रतिक्रिया (गैल्वानिक स्किन रिस्पॉन्स) पद्धति का प्रयोग करते हैं।

इन वैज्ञानिक प्रमाणों के अतिरिक्त सामान्य व्यावहारिक जीवन में भी मस्तिष्क से लेकर त्वचा तक में विद्युत् संवेगों की क्षमता के प्रमाण मिलते रहते हैं। किसी व्यक्ति विशेष के प्रति आकर्षण तथा किसी के प्रति विकर्षण, यह शरीरस्थ विद्युत् की समानता, भिन्नता की ही प्रतिक्रियाएँ हैं। दो मित्रों के परस्पर एक-दूसरे को देखने, स्पर्श करने में विद्युतीय आदान-प्रदान होता है। योगी तो स्पर्श से अपनी विद्युत् का दूसरे व्यक्ति के शरीर में प्रवेश संकल्प शक्ति के सहारे विशेष रूप से कर सकते हैं, किंतु सामान्य स्पर्श से भी शरीरस्थ विद्युत् का आंशिक आदान-प्रदान होता रहता है। स्पर्श, सहलाने, हाथ मिलाने, गले मिलने आदि से जो स्पंदन अनुभव किये जाते हैं, वे विद्युतीय आवेगों के आदान-प्रदान के फलस्वरूप ही होते हैं, वैज्ञानिक भी इस तथ्य को अब स्वीकार करने लगे हैं।

विद्युतीय आवेशों के केंद्र संस्थान को भारतीय योग विद्या के परिप्रेक्ष्य में देखते हैं तो उसे प्राणमय कोश ही कहना पड़ेगा। प्राणमय कोश का स्पंदन, विद्युतीय आवेग, प्राण ही जीवन का सार तत्त्व है। यह प्राण ही प्रगति का आधार है। समृद्धि उसी के मूल्य पर खरीदी जाती है। सिद्धियों और विभूतियों का उद्गम स्रोत वही है। यह प्राण तत्त्व अपने भीतर प्रचुर परिमाण में भरा पड़ा है। उसका चुंबकत्व बढ़ा देने से विश्व प्राण से भी उसे अभीष्ट मात्रा में उपलब्ध और धारण किया जा सकता है। मानवी सत्ता में सन्निहित इस प्राण भंडार को प्राणमय कोश कहते हैं। सामान्यतया यह प्रसुप्त स्थिति में पड़ा रहता है और उससे शरीर निर्वाह भर के काम हो पाते हैं। उसे साधना विज्ञान के आधार पर जाग्रत् किया

जा सके, तो सामान्य में से असामान्य का प्रकटीकरण हो सकता है। प्राण की क्षमता असीम है। प्राण साधना से इस असीमता की दिशा में बढ़ चलना प्रचुर सशक्तता प्राप्त कर सकना संभव हो जाता है।

अध्यात्मशास्त्र में प्राण तत्त्व की गरिमा का भाव भरा उल्लेख है। उसे ब्रह्म तुल्य मानकर और सर्वोपरि ब्राह्मी शक्ति का नाम दिया गया है। प्राण की उपासना करने का आग्रह किया गया है। यह प्राण आखिर क्या है ? यह विचारणीय है।

विज्ञानवेत्ताओं ने इस संसार में ऐसी शक्ति का अस्तित्व पाया है जो पदार्थों की हलचल करने के लिए और प्राणियों को सोचने के लिए विवश करती है। कहा गया है कि यही वह मूल प्रेरक शक्ति है, जिससे निश्चेष्ट को सचेष्ट और निस्तब्ध को सक्रिय होने की सामर्थ्य मिलती है। वस्तुतः, शक्तियाँ और प्राणियों की विविध विध हलचलें इसी के प्रभाव से संभव हो रही हैं। समस्त अज्ञात और विज्ञात क्षेत्र के मूल में यही तत्त्व गतिशील है और अपनी गति से सबको अग्रगामी बनाता है। वैज्ञानिकों की दृष्टि में इन जड़-चेतन स्तरों को समन्वित क्षमता का नाम प्राण होना चाहिए। पदार्थ को ही सब कुछ मानने वाले ग्रैविटी, ईथर, मैग्नेट के रूप में उसकी व्याख्या करते हैं अथवा इन्हीं की उच्चस्तरीय स्थिति उसे बताते हैं।

चेतना का स्वतंत्र अस्तित्व मनाने वाले वैज्ञानिक इसे 'साईकिक फोर्स' या 'लेटेंट हीट' कहते हैं और भारतीय मनीषी उसे प्राण तत्त्व कहते हैं। इस संदर्भ में भारतीय तत्त्वदर्शन का मत रहा है कि प्राण द्वारा ही शरीर का अस्तित्व बना रहता है। उसी के द्वारा शरीर का पोषण, पुनर्निर्माण, विकास एवं संशोधन का क्रम चलता है। कहने का अर्थ यह है कि हर क्रिया प्राण द्वारा ही संचालित होती है। अन्नमय कोश में व्याप्त प्राणमय कोश ही उसका संचालन और नियंत्रण करता है। शरीर-संस्थान की छोटी-से-छोटी इकाई में भी प्राण विद्युत् का अस्तित्व अब विज्ञान ने स्वीकार कर लिया है। शरीर की हर कोशिका विद्युत् विभव (इलेक्ट्रिक चार्ज) है।

यही नहीं, किसी कोशिका के नाभिक (न्यूक्लियस) में लाखों की संख्या में रहने वाले प्रजनन क्रिया के लिए उत्तरदायी जीन्स जैसे अति सूक्ष्म घटक भी, विद्युत् आवेशयुक्त पुटिकाओं (पैक्टिनेट्स) के रूप में जाने और माने जाते हैं। तात्पर्य यह है कि विज्ञान द्वारा जानी जा सकी शरीर की सूक्ष्मतम इकाई में भी विद्युत् आवेश रूप में प्राण तत्त्व की उपस्थिति स्वीकार की जाती है।

शरीर की हर क्रिया का संचालन प्राण द्वारा होने की बात भी सदैव से कही जाती रही है। योग ग्रंथों में शरीर की विभिन्न क्रियाओं को संचालित करने वाले प्राण तत्त्व को विभिन्न नामों से संबोधित किया गया है। उन्हें पंच प्राण कहा गया है। इस प्रकार शरीर के विभिन्न क्षेत्रों में सक्रिय प्राण को पंच उप प्राण कहा गया है। वर्तमान शरीर विज्ञान ने भी शारीरिक अंतरंग क्रियाओं की व्याख्याएँ विद्युत् संचार क्रम के ही आधार पर की है। शरीर के एक सिरे तक जो संचार क्रम चलता है, वह विद्युतीय संवहन प्रक्रिया के माध्यम से ही है। संचार कोशिकाओं में ऋण और धन प्रभार (निगेटिव तथा पॉजिटिव चार्ज) अंदर-बाहर होते रहते हैं और इसी से विभिन्न संचार क्रम चलते रहते हैं। इसे वैज्ञानिक भाषा में सेल का डिपोलराइजेशन तथा 'रिपोलराईजेशन' कहते हैं। यह प्रक्रिया भारतीय मान्यतानुसार पंच-प्राणों में वर्णित 'व्यान' के अनुरूप है।

आमाशय तथा आंतों में भोजन का पाचन होकर उसे शरीर के अनुकूल रासायनिक रसों में बदल दिया जाता है। वह रस आँत की झिल्ली में से पार होकर रस में मिलते हैं, तब सारे शरीर में फैल पाते हैं। कुछ रसायन तो सामान्य संचरण क्रम से ही रक्त में मिल जाते हैं, किंतु कुछ के लिए शरीर को शक्ति खर्च करनी पड़ती है। इस विधि को 'एक्टिव ट्रांसपोर्ट' (सक्रिय परिवहन) कहते हैं। आँतों में जो विद्युतीय प्रक्रिया होती है। उसे वैज्ञानिक 'सोडियम पंप' के नाम से संबोधित करते हैं। सोडियम कणों में ऋण और धन प्रभार बदलने से वह सेलों की दीवार के इस पार से उस पार जाते हैं। उनके संसर्ग से शरीर के पोषक रसों (ग्लूकोज, वसा आदि) की भेदकता बढ़ जाती है तथा वह भी उसके साथ संचरित हो जाते

हैं। यह प्रक्रिया पंच-प्राणों में 'प्राण' वर्ग के अनुसार कही जा सकती है।

ऐसी प्रक्रिया हर सेल में चलती है। हर सेल अपने उपयुक्त आहार खींचता है तथा उसे ताप ऊर्जा में बदलता है। ताप ऊर्जा भी हर समय सारे शरीर में लगातार पैदा होती और संचारित होती रहती है। पाचन केवल आँतों में नहीं, शरीर के हर सेल में होता है। उसके लिए रसों को हर सेल तक पहुँचाया जाता है। यह प्रक्रिया जिस प्राण ऊर्जा के सहारे चलती है, उसे भारतीय प्राणवेत्ताओं ने 'समान' कहा है। इसी प्रकार हर कोशिका में रस परिपाक के दौरान तथा पुरानी कोशिकाओं के विखंडन से जो मल बहता है, उसके निष्कासन के लिए भी विद्युत रासायनिक (इलेक्ट्रो केमिकल) क्रियाएँ उत्तरदायी हैं। प्राण विज्ञान में इसे 'अपान' की प्रक्रिया कहा गया है।

पंच-प्राणों में एक वर्ग 'उदान' भी है। इसका कार्य शरीर के अवयवों को कड़ा रखना है। वैज्ञानिक भाषा में इसे इलेक्ट्रिकल स्टिमुलाइजेशन कहा जाता है। शरीरस्थ विद्युत् संवेगों से अन्नमय कोश के सेल किसी भी कार्य के लिए कड़े अथवा ढीले होते रहते हैं।

शरीर में इस प्रकार की अनेक अंतरंग प्रक्रियाएँ कैसे चलती हैं ? इसकी व्याख्या वैज्ञानिक पूरी तरह नहीं कर सके हैं। उसके लिए उन्होंने कई तरह के स्थूल सिद्धांत बनाये हैं। उनमें सोडियम-पोटेशियम साइकिल, पोटेशियम पंप, ए० टी० फी०-ए० डी० पी० सिस्टम, तथा साइक्लिक ए० एम० पी० आदि के हैं। इनकी क्रिया पद्धति तो कोई रसायन विज्ञान का विद्यार्थी ही ठीक से समझ सकता है, किंतु है यह सब 'विद्युत् रासायनिक' सिद्धांत ही। इस सिद्धांत के अनुसार किसी घोल में रासायनिक पदार्थों के अणु ऋण और धन प्रभार युक्त भिन्न-भिन्न कणों में विभक्त हो जाते हैं। इन्हें आयन कहा जाता है। आयनों की संचार क्षमता बहुत अधिक होती है। इच्छित संचार के बाद ऋण और धन प्रभारयुक्त आयन मिलकर पुनः विद्युतीय दृष्टि से उदासीन (न्यूट्रल) अणु बना लेते हैं।

शरीर में पाचन, शोधन, विकास एवं निर्माण की अगणित प्रक्रियाएँ इसी आधार पर चल रही हैं। तत्त्व दृष्टि से देखा जाय तो सारे शरीर-संस्थान में प्राण तत्त्व की सत्ता और सक्रियता स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ेगी।

इन मोटी गतिविधियों से आगे बढ़कर शरीर की सूक्ष्म, गहन गतिविधियों का विश्लेषण करने पर उनमें भी प्राण, शरीरस्थ प्राण तत्त्व का नियंत्रण तथा प्रभाव दिखाई देता है। शरीर में हारमोनों और एंजाइमों की अद्भुतता सर्वविदित है। इन दोनों की सक्रियता शरीर में आश्चर्यजनक परिवर्तन लाने एवं शक्ति संचार करने में समर्थ है, इन सभी को शरीर की सूक्ष्म से सूक्ष्म गतिविधियों को विद्युतीय संवेगों द्वारा प्रभावित किया जा सकता है। विज्ञान अभी ऐसा कर नहीं सका है। पर अध्यात्म विज्ञान के द्वारा, प्राणमय कोश को परिष्कृत कर भारतीय ऋषियों ने यह सब कर दिखाया है, वरन् ऐसे प्रमाण भी प्रस्तुत किए हैं कि अपने प्राण परिष्कार से दूसरे व्यक्तियों को, समाज को, यहाँ तक कि पूरे विश्व को प्रभावित किया जा सके।

प्राण से ऋषियों का क्या अभिप्राय है ? इसका परिचय इस शब्द के नामकरण के आधार पर प्राप्त होता है। प्राण शब्द की व्युत्पत्ति 'प्र' उपसर्ग पूर्वक 'अन्' धातु से होती है। 'अन्' धातु जीवन, शक्ति, चेतनावाचक हैं। इस प्रकार उसका अर्थ प्राणियों की जीवनी शक्ति के रूप में किया जाता है।

अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि चेतन की जीवनी शक्ति क्या हो सकती है ? यहाँ उसका उत्तर 'संकल्प' के रूप में दिया जा सकता है। जिजीविषा से लेकर प्रगतिशीलता तक उसके असंख्य रूप हैं। अंतःकरण की आकांक्षा ही विचार शक्ति और क्रिया शक्ति को उत्तेजना एवं दिशा देती है। मात्र आकांक्षा रहने से काम नहीं चलेगा। उसे तो कल्पना या ललक मात्र कहा जा सकता है। आकांक्षा के साथ उसे पूरा करने की साहसिकता भी जुड़ी हुई हो, तो उसे संकल्प कहा जा सकेगा। संकल्प में आकांक्षा, निष्कर्ष, योजना और अग्रगमन के लायक अभीष्ट

साहसिकता जुटी रहती है। यह संकल्प ही मनुष्य जीवन का वास्तविक बल है, उसी के सहारे पतन-उत्थान के आधार बनते हैं। परिस्थितियाँ इसी संकल्प भरी मनःस्थिति के आधार पर खिंचती चली आती हैं। इसी संकल्प तत्त्व को चेतन का प्राण कहा जा सकता है। इसी की उपासना करने के लिए, अभिवर्द्धन करने के लिए तत्त्वदर्शियों ने निर्देश दिये हैं। प्रश्नोपनिषद् ने प्राण की व्याख्या संकल्प रूप में की है।

यच्चित्तस्तेनैष प्राणमायाति प्राणस्तेजसा युक्तः। सहात्मना यथा संकल्पितं लोकं नयति।

—प्रश्नोपनिषद् ३। १०

आत्मा का जैसा संकल्प होता है, वैसा ही स्वरूप होता संकल्प इस प्राण का बन जाता है। यह प्राण ही जीव के संकल्पानुसार उसे विभिन्न योनियाँ प्राप्त कराता है।

विकासवाद के अनुसार सृष्टि के आरंभ में उत्पन्न हुए एक कोशीय जीवाणु इसी संकल्प शक्ति की प्रेरणा से क्रमशः आगे बढ़े और विकसित हुए हैं। अध्यात्मशास्त्र के अनुसार ब्रह्म ने एक से बहुत होने की इच्छा की और ब्रह्म की इच्छा शक्ति ही प्रकारांतर से परा-अपरा प्रकृति बनकर जगत् बन गई। उसी का विस्तार पंचतत्त्वों और पाँच प्राणों में होता चला गया है।

विश्व के अंतराल में काम करने वाली समग्र सामर्थ्य को व्याख्या के रूप में प्राण कहा जाता है। वह जड़ और चेतन दोनों को ही प्रभावित करती है। उपासना उसके इस एक पक्ष की ही की जाती है, जो मनुष्य को सत्प्रयोजनों की स्थिति में अग्रसर करने के लिये प्रयुक्त होती है। चेतना की सामर्थ्य तो उभयपक्षीय है। वह दुष्टता के क्षेत्र में दुस्साहस बनकर भी काम करती है। इस निषिद्ध पक्ष को नहीं, जीवन को उत्कृष्टता की ओर अग्रसर करने वाले सत्संकल्पों को उपास्य प्राण माना गया है। उसकी जितनी मात्रा उपलब्ध होती है, उसी अनुपात से प्रगतिशीलता का लाभ मिलता है। इन विशेषताओं को देखते हुए उसे ब्राह्मी शक्ति—ब्रह्म प्रेरणा

एवं साक्षात् ब्रह्म कहा गया है। सुविधा के लिए इसे अंतरात्मा की पुकार भी कह सकते हैं। शास्त्र की दृष्टि में प्राण तत्त्व की व्याख्या इस प्रकार होती है—

प्राणो ब्रह्मोति ह स्माह कौषीतकिस्तस्य ह वा एतस्य प्राणस्य ब्रह्मणो मनो दूतं वाक्परिवेष्टी चक्षुर्गात्रं श्रोत्रं संश्रावयितुं यो ह वा एतस्य प्राणस्य ब्रह्मणो मनो दूतं वेद दूतवान्भवति यश्चक्षुर्गोप्तुं गोप्तुमान्भवति यः श्रोत्रं संश्रावयितुं संश्रावयितुमान्भवति यो वाचं परिवेष्टीं परिवेष्टीमान्भवति ।

—कौषीतकि ब्राह्मणोपनिषद् २। १

यह प्राण ही ब्रह्म है। यह सम्राट् है। वाणी उसकी रानी है। कान उसके द्वारपाल हैं। नेत्र—अंग रक्षक, मन—दूत, इंद्रियाँ—दासी, देवताओं द्वारा यह उपहार उस प्राण ब्रह्म को भेंट किये गये हैं।

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे ।

यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्सर्वं प्रतिष्ठितम् ।।

—अथर्व० काण्ड १/१

उस प्राण को मेरा नमस्कार है, जिसके अधीन यह सारा जगत् है, जो सबका ईश्वर है, जिसमें यह सारा जगत् प्रतिष्ठित है।

प्राणोऽस्मि प्रज्ञात्मा । तं मामायुरमृतमित्युपमृतमित्युपास्स्वाऽऽयुः प्राणः प्राणोवा आयुः । यावदस्मिञ्छरीरे प्राणो वसति तावदायुः । प्राणेन हि एवमस्मिन् लोकेऽमृतत्त्व माप्नोति ।

—शांखायन

मैं ही प्राणी रूप प्रज्ञा हूँ। मुझे ही आयु और अमृत जानकर उपासना करो। जब तक प्राण है, तभी एक जीवन है। इस लोक में अमृतत्त्व प्राप्ति का आधार प्राण ही है।

स एष वैश्वानरो विश्वरूपः प्रोणोग्निरुदयते ।

—प्रश्नोपनिषद् १।७

वह प्राण रूपी तेजस् सूर्य से उदय के साथ समस्त विश्व में फैलने लगता है।

प्राणो भवत् परंब्रह्म जगत्कारणमव्ययम् ।

प्राणो भवेत् यथामंत्र ज्ञानकोश गतोऽपिवा ।।

प्राण ही जगत का कारण परंब्रह्म है। मंत्र ज्ञान तथा पंच कोश प्राण पर आधारित है।

प्राण शक्ति का वही ब्रह्म तेज आँखों में, वाणी में चिंतन और क्रिया में चमकता है। यह चमक ही बौद्धिक क्षेत्र में तेजस्विता और क्रिया क्षेत्र में ओजस्विता कहलाती है। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में यही मनस्विता, प्रतिभा बनकर दीप्तिवान् होती है। प्राण शक्ति ही सर्वतोमुखी समर्थता कही जाती है।

एषोऽग्निस्तपत्येष सूर्य एष पर्जन्यो मघवानेष वायुः ।

एष पृथिवी रयिर्देवः सदसत्त्वामृतं च यत् ।।

—प्रश्नोपनिषद् २।५

यह प्राण ही अग्निरूप धारण करके तपता है। यही सूर्य, मेघ, इंद्र, वायु, पृथ्वी तक भूत समुदाय है। सत्-असत् तथा अमृत स्वरूप ब्रह्म भी यही है।

अन्यत्र भी ऐसे ही उल्लेख हैं—

अमृतः स वै प्राणः ।

—शतपथ

यह प्राण ही निश्चित रूप से अमृत है।

प्राणोवाव आशाया भूयान्यथा ।

—छांदोग्योपनिषद् ७/१५/१

इस प्राण शक्ति की संभावना आशा से अधिक है।

प्राणो वै यशो बलम् ।

—वृहदारण्यक

प्राण ही यश और बल है।

प्राणश्च मे यज्ञेन कल्पंताम् ।

—यजुर्वेद

मेरी प्राण शक्ति सत्कर्मों में प्रवृत्त हो।

प्राण को कई व्यक्ति वायु या साँस समझते हैं और श्वास प्रश्वास क्रिया के साथ वायु का जो आवागमन निरंतर चलता रहता है उसके साथ प्राण की संगति बिठाते हैं। यह भूल इसलिए हो

जाती है कि अकसर प्राण के साथ 'वायु' शब्द ओर जोड़ दिया जाता है। यह समावेश संभवतः वायु के समान मिलते-जुलते गुण प्राण में होने के कारण उदाहरण की तरह हुआ हो। चूँकि प्राण भी अदृश्य हैं और वायु भी। प्राण भी गतिशील हैं और वायु भी। प्राण भी सारे शरीर एवं विश्व में व्याप्त हैं और वायु भी। इसलिए प्राण की स्थिति मोटे रूप में समझने के लिए उसे वायु के उदाहरण सहित प्रस्तुत किया गया है, किंतु वास्तविक बात ऐसी नहीं है। वायु पंचतत्त्वों में से एक होने के कारण जड़ है, किंतु प्राण चेतना का पुंज होने से उसका वस्तुतः कोई सादृश हो नहीं सकता। प्राण को प्रकृति की उत्कृष्ट सूक्ष्म शक्तियों (नेचर्स फाइनर फोर्सेज) में से एक कह सकते हैं। भारतीय योगियों ने इसे मानसिक या इच्छा संबंधी श्वास प्रक्रिया (रेस्पिरेशन) के रूप में लिया है। वास्तव में ऐसी ही दिव्य धारा के प्रभाव से उच्च कोटि की आत्मिक शक्तियाँ प्राप्त होनी संभव हैं। श्वास-प्रश्वास क्रिया का प्रभाव तो फेफड़ों तक, अधिक-से-अधिक भौतिक शरीर के बलवर्धन तक सीमित हो सकता है।

प्राणोऽस्यास्तीति प्राणी ।

अर्थात् प्राणवान् को प्राणी कहते हैं। सांख्यकार ने प्राण को तत्त्व नहीं, अंतःकरण का धर्म माना है। सांख्य सारिका में कहा गया है—

स्वालक्षण्यं वृत्तिस्त्रयस्य सैषा भवत्यसामान्या ।

सामान्यकरण वृत्तिः प्राणाद्या वायवः पञ्च ।।

—सांख्यकारिका २६

अंतःकरण के चार पक्ष हैं। चारों का अपना-अपना धर्म है। मन का संकल्प, बुद्धि का विवेक, चित्त की धारणा और अहं का अभिमान। इन चारों का सम्मिलित स्वरूप समग्र प्राण है विभिन्न कार्यों में होने वाले उसके प्रयोगों को देखते हुए प्राण, अपान, समान, उदान, ध्यान भेद से उसे पाँच प्रकार का कहा गया है।

न्याय दर्शन में प्राण को वायु अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। संभवतः उनका तात्पर्य 'ऑक्सीजन' या वैसी ही किसी अन्य प्रकृति क्षमता से रहा है। वैशेषिक के अनुसार—

शरीरांतः संचारी वायुः प्राणः संचैकोऽपि उपाधि भेदात् प्राणापानादि संज्ञां लभते।

शरीर के भीतर संचारित होने वाली वायु प्राण हैं। वह एक होने पर भी उपाधि भेद से पाँच प्रकार की है। योग दर्शन का अभिमत भी उसी से मिलता-जुलता प्रतीत होता है। वेदांतकार ने इससे अपना मतभेद व्यक्त किया। ब्रह्मसूत्र में कहा गया है—**ना वायु क्रिये प्रथगुपरेशात्।** अर्थात् वायु प्राण नहीं है, उनकी क्रिया और सत्ता में भेद है।

छांदोग्योपनिषद् और प्रश्नोपनिषद् में प्रजापति द्वारा इंद्रियों की शक्ति परीक्षा के संबंध में आलंकारिक आख्यायिका आती है। वे समर्थ भर दीखती तो थीं, पर प्राण शक्ति के बिना कुछ भी कर सकने में समर्थ न हो सकीं। तब उन सब ने मिलकर प्राण की श्रेष्ठता स्वीकार की और उन्हें नमन किया।

अधिकांश उपनिषद्कारों ने प्राण को आत्मसत्ता की क्रिया शक्ति माना है और उससे अविच्छिन्न कहा है। आत्मा को ब्रह्म भी कहा जाता है। दोनों की एकता बोधक कितने ही प्रतिपादन मिलते हैं। इस दृष्टि से प्राण को ब्राह्मी शक्ति भी कहा गया है।

प्रश्नोपनिषद् में प्राण को व्रात्य ऋषि कहा गया है—**“व्रात्यस्त्वं प्राणैर्कषि”** हे प्राण, तू (व्रात्य) कर्तव्यच्युत तो रहता है फिर भी मूलतः ऋषि ही है। व्याख्याकारों ने अंततः कई ऋषियों के नामों पर प्राण का उल्लेख किया है। उसे 'गृत्समद' कहा गया है। 'गृत्सः' कहते हैं नियंत्रणकर्ता को, मद कहते हैं—कामुकता एवं अहंकार को। जो इन पर नियंत्रण कर सके वह 'गृत्समद' है। सबका मित्र होने से उसे 'विश्वामित्र' कहा गया है। पापों से बचाने वाला—अत्रि। पोषक होने से भारद्वाज और विशिष्ट होने से उसकी संज्ञा वशिष्ठ बताई गई है।

कषाय-कल्मषों और कुसंस्कारों का निराकरण-उन्मूलन इस प्रचंड संकल्प शक्ति के सहारे ही संभव होता है। ढीले-पोले स्वभाव वाले आत्म परिष्कार की बात सोचते भर हैं, पर वैसा कुछ कर नहीं पाते। कल्पना-जल्पनाओं में उलझे रहते हैं प्रचंड संकल्प के बल पर उत्पन्न आत्मिक साहस ही दुर्भावना, दुष्प्रवृत्तियों और कुसंस्कारों से जूझता है। उत्कृष्टता की दिशा में बढ़ चलने के लिए प्रेरणा और अवरोधों से जूझने की क्षमता उसी आत्मबल से मिलती है जिसे प्राण कहा जाता है। प्राण देवता के अनुग्रह से मनोविग्रह और विकृतियों के उन्मूलन होने की बात वृहदारण्यक उपनिषद् में इस प्रकार कही गयी है—

**स वा एषा देवतैतासां देवतानां पाप्मानं मृत्युमपहत्य
यत्रासां दिशामंतस्तद्गमयांचकार तदासां पाप्मनो विन्यदधात्
तस्मान्न जनमियात्रान्तमियात्रेत्पाप्मानं मृत्युमन्ववायानीति ।**

—वृहदारण्यकोपनिषद् १।३।१०

प्राण देवता ने इंद्रियों के पापों को दिगंत तक पहुँचाकर विनष्ट कर दिया, क्योंकि वह ही इंद्रियों के मरण का कारण था। इन कल्मषों को इस निश्चय के साथ भगाया कि पुनः न लौट सकें।

**अथ चक्षुरत्यवहत् तद् यदा
मृत्युमत्यमुच्यत स आदित्योऽभवत् ।
सोऽसावादित्यः परेण
मृत्युमतिक्रान्तास्तपति ।**

—वृहदारण्यकोपनिषद् १।३।१४

जब प्राण की प्रेरणा से चक्षु निष्पाप हुए, तो वे आदित्य बनकर अमर हो गये और तपते हुए सूर्य की तरह अपने तप से ज्योतिर्मय हो उठे।

इसी प्राण शक्ति को गायत्री कहते हैं। यों वह क्षमता स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों के कण-कण में संव्याप्त है, पर उसका केंद्र संस्थान मल-मूत्र छिद्रों के मध्य मूलाधार चक्र गहवर

में माना गया है। प्राणशक्ति के अभिवर्धन के लिए इसी मूलाधार संस्थान का द्वार खटखटाना पड़ता है। दुर्ग में प्रवेश करने के लिए उसका फाटक खोलना या तोड़ना पड़ता है। मूलाधार चक्र की साधना से यही प्रयोजन पूरा होता है। गायत्री की प्राणशक्ति का मूलाधार चक्र से संबंधित होने का उल्लेख गायत्री मंजरी में मिलता है—

यौगिकानां समस्तानां साधनानां तु हे प्रिये ।

गायत्र्येव मता लोके मूलाधारो विदांवरैः॥

—गायत्री मंजरी

विद्वानों का मत है कि समस्त यौगिक साधनाओं का मूलाधार गायत्री ही है।

प्राणाग्नय एवैतस्मिन् पुरे जाग्रति ।

—प्रश्नोपनिषद् ४/३

इस शरीररूपी ब्रह्मपुरी में प्राण की अग्नियाँ ही सदा जलती रहती हैं।

यद्वाव प्राण जागृयुः तदेवं जागरितन् ।

—ताण्ड्य०

प्राण को जाग्रत् करना ही महान् जागरण है।

प्राण का ज्ञान एवं जागरण ही अमृतत्व एवं मोक्ष प्राप्त करने का मार्ग है। उसी से यह लोक-परलोक सुधरता है। इसी से भौतिक और आध्यात्मिक विभूतियाँ प्राप्त होती हैं। इसलिये वेद ने कहा है—हे विचारशीलों ! प्राण की उपासना करो—गायत्री महामंत्र का आश्रय लो और आत्म कल्याण का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए आगे बढ़ चलो।

य एवं विद्वान्प्राणं वेद न हास्य प्रजा ।

हीयतेऽमृतो भवति तदेष श्लोकः॥

—प्रश्नोपनिषद् ३/११

जो ज्ञानी इस प्राण के रहस्य को जानता है, उसकी परंपरा कभी नष्ट नहीं होती; वरन् अमर हो जाती है।

प्राण के रहस्य को जानकर उसके द्वारा शरीर-संस्थान में चमत्कारी परिवर्तन की बात भारतीय महर्षियों ने बलपूर्वक कही है। इसके लिए प्राणमय कोश की शुद्धि एवं शरीरस्थ प्राण ऊर्जा के प्रयोग को ही एकमेव मार्ग बताया गया है। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है। स्थूल विज्ञान की दृष्टि से ही मस्तिष्क एवं हृदय जैसे विलक्षण केंद्रों से लेकर त्वचा तक में व्याप्त प्राण संस्थान तक उसके प्रभाव को स्वीकार किया जा रहा है। योग दृष्टि तो उससे भी सूक्ष्म रही है। उसके द्वारा जो निष्कर्ष निकाले गये हैं वे और भी अधिक गहन तथा व्यापक स्तर के रहस्यों एवं तथ्यों को प्रकट करने वाले होने ही चाहिए। अस्तु, प्राणमय कोश को परिष्कृत एवं सबल बनाकर न केवल अपने शरीर बल्कि दूसरे शरीरों को भी प्रभावित एवं विकसित करने की बात में कोई अतिशयोक्ति नहीं है।



सूक्ष्म सिद्धियों का केंद्र—विज्ञानमय कोश

विज्ञानमय कोश आत्म-चेतना का वह गहन अंतराल है जिसका सीधा संबंध ब्रह्मांडीय चेतना के साथ बनता है। अन्नमय, प्राणमय और मनोमय कोश व्यक्ति चेतना की परिधि में बँधे रहते हैं। उनके विकास का लाभ मनुष्य के निजी उत्कर्ष में दृष्टिगोचर होता है। संपर्क क्षेत्र के व्यक्ति उससे लाभ उठाते हैं। बलिष्ठ शरीर, प्रखर प्रतिभा और विद्या-बुद्धि के सहारे ही कितने ही महत्त्वपूर्ण कार्य सधते हैं। व्यक्तित्व निखरता और क्षमता संपन्न बनता है। प्रगति के आरंभिक चरण यही हैं। क्रमिक उन्नति करते हुए इसी मार्ग से चरम लक्ष्य तक पहुँचना संभव होता है।

‘ज्ञान’ सामान्य लौकिक जानकारी को कहते हैं। दूसरे शब्दों में इसे शिक्षा भी कहा जा सकता है। विज्ञान का तात्पर्य है—विशेष ज्ञान। अध्यात्म प्रयोजनों में यह शब्द इस अर्थ में प्रयुक्त है, यों व्यवहार में विज्ञान का तात्पर्य ‘साइंस’ समझा जाता है। उसे पदार्थ विज्ञान का संक्षेप माना गया है पर अध्यात्म में वैसा नहीं है। सामान्य अर्थात् कामकाजी, लौकिक, भौतिक, व्यावहारिक विशेष अर्थात् आंतरिक, अंतरंग, सूक्ष्म, चेतन, आध्यात्मिक। विशेष ज्ञान अर्थात् विज्ञान। सामान्य बुद्धि लौकिक कुशलता संपन्न होती है। असामान्य बुद्धि ‘ऋतंभरा प्रज्ञा’ कहलाती है। उसके द्वारा आंतरिक प्रगति और आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति का साधन जुटाया जाता है। विज्ञानमय कोश चेतना की वह परत है, जो अपने भीतर उच्चस्तरीय विभूतियों को छिपाये रहती है। ‘कोश’ भंडार को भी कहते हैं। विशेष, अलौकिक जानकारी, विशेष शक्ति, अंतःकरण की उच्च स्थिति, इस संस्थान की उत्पत्ति एवं उपलब्धि है। इस सामर्थ्य के सूत्र यों रहते तो अपने ही अंतःकरण में हैं, पर वस्तुतः उसका संबंध सूक्ष्म जगत् में संव्याप्त ब्रह्मांडीय चेतना से जुड़ा रहता है।

छोटे बैंक बड़े बैंकों से संबद्ध हों, तो आवश्यकतानुसार उनके बीच आदान-प्रदान होता रहता है। जरूरत के समय छोटे बैंक बड़े संस्थानों से संरक्षण और सहयोग प्राप्त कर सकते हैं। इसी प्रकार सूक्ष्म जगत् की हलचलों की जानकारी और उपयोगी विभूतियों को उपलब्ध कर सकना उनके लिए संभव हो जाता है, जिनका विज्ञानमय कोश समुन्नत स्तर का बन चुका है।

विज्ञानमय कोश की विभूतियों और क्षमताओं की जानकारी से पूर्व उसका स्वरूप जान लेना उपयुक्त रहेगा। चेतना की इच्छा, ज्ञान और क्रिया शक्ति की त्रिवेणी को ही अध्यात्म विज्ञान में विज्ञानमय कोश कहा जाता है। अध्यात्मशास्त्र के अनुसार जीवात्मा के तीन गुण गिनाये गये हैं—(१) सत् (२) शिव (३) सुंदर। जीवन तत्त्व की व्याख्या 'सत्यं शिवं सुंदरम्' के रूप में की गई है। विज्ञान की भाषा में—सत् को उत्कृष्टता के प्रति आस्था-श्रद्धा कहा गया है। शिव का तात्पर्य है, विवेकयुक्त दूरदर्शी दृष्टिकोण—तदनुरूप आकांक्षाओं का प्रवाह। सुंदरम्—सौंदर्य बोध, कलात्मकता, संवेदना। आत्म भाव का जिस पर भी आरोपण होता है, वह सुंदर लगने लगता है। कला-दृष्टि से सौंदर्य बनकर प्रतिबिंबित होती है, अन्यथा इस जड़ जगत् के पदार्थों में सौंदर्य जैसा कुछ दिखता नहीं।

आस्था, उमंग और सरसता के समन्वय को अंतःकरण या अंतरात्मा कहा जा सकता है। पुरानी परिभाषा में मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार को अंतःकरण चतुष्टय कहा जाता रहा है। अस्तु, यदि वस्तु-स्थिति समझने में या उसके नामकरण में भ्रम उत्पन्न होता है, तो अंतःकरण के स्थान पर अंतरात्मा शब्द प्रयुक्त हो सकता है। मनःशास्त्र के अनुसार इसे चेतना की अत्यंत परिष्कृत स्थिति कहते हैं। इसमें भौतिक तत्त्वों का कम और आत्मिक उत्कृष्टता का समावेश अधिक है। भौतिकता प्रधान मन पर वासना, तृष्णा अहंता ही छाई रहती है, उसमें स्वार्थ सिद्धि ही प्रधान आधार होती है। अंतरात्मा का स्वार्थ विकसित होकर परमार्थ बन जाता है। उसकी आत्मीयता शरीर-परिवार तक सीमित न रहकर सर्वजनीय बन

जाती है। आस्थाएँ वातावरण के संपर्क में नहीं—आदर्शों से प्रभावित होती हैं। आकांक्षाएँ लाभ को दृष्टि में रखकर नहीं, उत्कृष्टता के समर्थन पर केंद्रित होती रहती हैं। लाभ की दृष्टि से सौंदर्य का आरोपण नहीं होता, वरन् पदार्थों के अंतराल में थिरकने वाली कला का सूक्ष्म दर्शन ही अंतरात्मा में हुलास-उल्लास उत्पन्न करता है। संक्षेप में चेतना की वह उच्चस्तरीय परत जो आत्मा के अति समीप है, जो वातावरण से प्रभावित कम होती है और उस पर अपनी मौलिकता का प्रभाव अधिक छोड़ती है—अंतरात्मा कहीं जायेगी। किसी को आपत्ति न हो, तो इसी की अंतःकरण शब्द से भी संबोधित किया जा सकता है।

इच्छा शक्ति, ज्ञान शक्ति और क्रिया शक्ति 'चेतना त्रिवेणी' के ही त्रिविध प्रवाह है। इनका उद्गम स्रोत अंतरात्मा है। वहाँ की उमंगें ही इच्छा को दिशा देती हैं, उसका संकेत पाकर मस्तिष्कीय ताना-बाना बुना जाता है। वहाँ के निर्देशों का पालन बिना नुकताचीनी किये शरीर स्वामी भक्त सेवक की तरह करता रहता है। इन तथ्यों पर विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि आत्मा और संसार का संपर्क सूत्र इसी केंद्र से जुड़ता है। जीवन का स्वरूप यहीं बनता है और उसका प्रवाह यहीं से निःसृत होता है। मनोविज्ञान की भाषा में इसे 'सुपरचेतन' कह सकते हैं। दार्शनिकों ने इस अति मानस की व्याख्याएँ परस्पर विरोधी की हैं, तो भी उनका तात्पर्य चेतना के उस स्तर से है, जिसे व्यक्तित्व का उद्गम अथवा मर्मस्थल कहा जा सके। प्रत्येक सूक्ष्मदर्शी व्यक्ति के अस्तित्व में मूलभूत सत्ता इस अंतरात्मा की ही काम करती पाई गई है और उसी की सर्वोपरि गरिमा स्वीकार की गई है।

साधना विज्ञान में इसी अंतरात्मा को 'विज्ञानमय कोश' कहा है। उसके परिष्कृत प्रयासों को योगाभ्यास में सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। आस्थाओं का परिमार्जन होने से जीवन के बहिरंग स्वरूप में कायाकल्प होते देर नहीं लगती। वाल्मीकि, अंगुलिमाल, आंबपाली, अजामिल, सूर, तुलसी आदि के जीवन परिवर्तन को

एक प्रकार से आध्यात्मिक कायाकल्प ही कह सकते हैं। सामान्य स्थिति के मनुष्य असामान्य स्तर के महामानव बने हैं। इसमें भी आस्थाओं का उन्नयन ही प्रधान भूमिका निबाहता दृष्टिगोचर होता है, कबीर, दादू, रैदास, रामदास, रामकृष्ण, विवेकानंद, शंकराचार्य, दयानंद आदि महामानव परिस्थितियों के हिसाब से कुछ अच्छी स्थिति में नहीं, जन्मे थे लिंकन, वाशिंगटन आदि को प्रगति में उनकी परिस्थिति की नहीं, मनःस्थिति की ही प्रधान भूमिका रही है ध्रुव, प्रहलाद, बुद्ध, महावीर आदि जन्मे तो राज परिवारों में थे, पर व्यक्तित्व को उच्चस्तरीय बनाने का कोई वातावरण उपलब्ध नहीं था। नारद आदि की प्रेरणा से अथवा स्व-संवेदनाओं से प्रभावित होकर उनने अपनी आस्थाओं में परिवर्तन किया और उतने ऊँचे जा पहुँचे जितने कि सामान्यतया कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। यह अंतःकरण में परिवर्तन एवं परिष्कार का ही चमत्कार है। यह विज्ञानमय कोश किस प्रकार परिष्कृत होता है, इसके कितने ही मार्ग एवं उपाय हो सकते हैं। अनायास, दैवी, अनुग्रह आदि अन्य कारण भी इस क्षेत्र के विकास-परिष्कार के कारण हो सकते हैं, पर प्रयत्न-पुरुषार्थ कर, क्रमिक गति से अंतःकरण का स्तर ऊँचा उठाने की प्रक्रिया विज्ञानमय कोश की साधना ही मानी गई है।

विज्ञानमय कोश का यह बहिरंग जीवन पक्ष हुआ। उसकी एक दिशाधारा सूक्ष्म जगत् की ओर भी प्रभावित होती है। अंतःकरण की यह प्रक्रिया सामान्य मनुष्य को महात्मा, देवात्मा, परमात्मा के स्तर तक ऊँचा उठा ले जाने वाली कही जा सकती है। दूसरी वह है जो सूक्ष्म जगत् के साथ जीव-सत्ता का संपर्क जोड़ती है। दोनों के बीच महत्त्वपूर्ण आदान-प्रदान संभव करती है।

उम जिस दुनिया के संपर्क में हैं, वह स्थूल जगत् है। यह इंद्रियगम्य है। इसके भीतर प्रकृति की वह सत्ता है जो पदार्थ की तरह प्रत्यक्ष नहीं—शक्ति के रूप में विद्यमान और बुद्धिगम्य है। इस स्थूल जगत् का परिचय, इंद्रियों से, बुद्धि से, यंत्र-उपकरणों

से मिलता है। पदार्थों और प्रकृति के शक्तियों का लाभ उठा सकना भी उपरोक्त स्थूल साधनों से संभव हो जाता है। इससे आगे सूक्ष्म जगत् का अस्तित्व आरंभ होता है, जो इंद्रियगम्य न होने से अतींद्रिय या इंद्रियातीत कहा जाता है। प्रयोगशाला में उसे प्रमाणित नहीं किया जा सकता और बुद्धि ही उनका आधार एवं कारण समझ सकने में समर्थ होती है। इतने पर भी उस सूक्ष्म जगत् का आधार अपने स्थान पर चट्टान की तरह अडिग है। उसका अस्तित्व स्वीकार करने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं।

जहाँ तक मानवी बुद्धि का संबंध है, वहाँ अतींद्रिय कही जाने वाली ऐसी हलचलों का पता लगता है, जो विदित आधारों से सर्वथा भिन्न हैं। मनुष्य, मनुष्यों के बीच चलने वाले विचार, संचार को टेलीपैथी कहते हैं। दूरवर्ती घटनाओं का अनायास आभास मिलने के असंख्य प्रमाण मिलते हैं। इसे दूरदर्शन कह सकते हैं। भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं का पूर्वाभास मिलना ऐसा तथ्य है, जिसे झुठलाया नहीं जा सकता। ऐसे घटना क्रम यों सर्वदा सब पर प्रकट नहीं होते, फिर भी, जब भी, जिन्हें भी, ऐसी अनुभूतियाँ हुई हैं, वे ऐसी हैं, जिनके आधार पर किसी अविज्ञात सूक्ष्म जगत् का परिचय मिलता है और विदित होता है कि उसमें भी अपनी ही दुनिया की तरह कुछ-न-कुछ हलचलें होती अवश्य हैं। मरणोत्तर जीवन को प्रमाणित करने में भूत-प्रेतों के अस्तित्व और पुनर्जन्म के विवरण एक समस्या के रूप में सामने आते हैं। जीवन के उपरांत जीवात्मा की सत्ता कहाँ रहती है ? वहाँ उनका निवास निर्वाह कैसे होता है ? इन प्रश्नों का समाधान सूक्ष्म जगत् का अस्तित्व स्वीकार किए बिना और किसी तरह नहीं हो सकता। किन्हीं विशिष्ट व्यक्तियों में विचित्र प्रकार की अतिमानवी क्षमताएँ देखी गई हैं इन्हें चमत्कारी सिद्धियाँ कहा जाता है। शाप, वरदान से लेकर आश्चर्यजनक कृत्य उपस्थित कर देने तक की विचित्रताएँ कैसे, कहाँ से उत्पन्न

होती हैं ? इसका उत्तर सूक्ष्म जगत् की सत्ता स्वीकार किये बिना और किस प्रकार दिया जा सकता है ?

जन्मजात रूप से ही किन्हीं बालकों में ऐसी विशेषताएँ पाई जाती हैं, जिनकी सामान्य विकास क्रम के साथ कोई संगति नहीं बैठती। किन्हीं की स्मृति, सूझ-बूझ ऐसी होती है जिसे विलक्षण कहा जा सकता है। भूमिगत जल-स्रोतों को बताकर जल समस्या के समाधान के चमत्कार कितने ही सिद्ध पुरुषों ने दिखाये हैं। बिना अन्न-जल के निर्वाह शरीर विज्ञान की दृष्टि से असंभव है, पर पौहारी बाबा जैसे व्यक्तियों ने उस असंभव का संभव होना सिद्ध किया है। पंजाब के महाराजा रणजीत सिंह की निगरानी में हरिदास नामक साधु ने कई महीने की लंबी भूमि समाधि ली थी। ऐसे चमत्कार अन्यत्र भी दृष्टिगोचर होते रहते हैं। देवताओं का अनुग्रह—मृतात्मा के सहयोग—मंत्र साधना के प्रतिफल आदि, ऐसे अनेकों तथ्य हैं जिन्हें अंध-विश्वास कहकर टाला नहीं जा सकता। मिश्र के पिरापिडों की खोज-बीन करने वाले शोधकर्त्ताओं पर विपत्तियों के पहाड़ टूटते रहे हैं, उन्हें संयोग मात्र कहने से काम नहीं चलता। योगियों में पाई जाने वाली कई तरह की विचित्रताएँ अकारण नहीं हो सकती। ईश्वर भक्तों को जो विशिष्टताएँ उपलब्ध होती रही हैं, वे मूढ़ मान्यताएँ भर नहीं हैं, दंत कथाएँ उनसे जुड़ी तो हो सकती हैं, पर वह पूरे-का-पूरा अंधविश्वास भर है, यह कह देना, तथ्यों से आँखें मीच लेने जैसा होगा। बुद्धि की समझ में जो न आये, वही अप्रामाणिक, वही अविश्वस्त, यह दुराग्रह कुछ समय पहले तक तो प्रबल था, पर अब विचारशीलता ने संतुलन साधा है और यह गंभीरतापूर्वक सूक्ष्म जगत् के अस्तित्व की शोध की जा रही है।

सूक्ष्म जगत् की एक भौतिकवादी सत्ता ही ऐसी सामने आ खड़ी हुई है जो अध्यात्मवादियों के द्वारा प्रतिपादित सूक्ष्म जगत् से भी विचित्र और सशक्त है। वह मान्यता प्रति पदार्थ की—प्रति विश्व की है। ऐंटीमैटर-ऐंटीयूयनिवर्स के तथ्य इस प्रकार सामने आये हैं कि उनके आधार पर एक अपने साथ

सटे हुए विलक्षण विश्व का अस्तित्व जुड़ा देखकर हतप्रभ रह जाना पड़ता है।

तंत्र विज्ञान में 'छाया पुरुष' साधना का उल्लेख है। कहा गया है कि मनुष्य की सूक्ष्म सत्ता का प्रतिनिधित्व करने वाला एक जीवित प्रेत होता है और वह साथ ही रहता है—इसकी देवता या भूत-प्रेत जैसी साधना करके उसे आज्ञानुवर्ती बनाया जा सकता है। स्थूल शरीर—स्थूल कार्य करता है और सूक्ष्म शरीर—सूक्ष्म स्तर का काम कर सकता है। छाया पुरुष की सिद्धि में अपना ही एक और शरीर अपने हाथ आ जाता है और इन दोनों शरीरों से दो प्रकार के काम एक साथ करना संभव हो जाता है। इस प्रतिपादन में एक प्रतिमनुष्य का—छाया पुरुष का अस्तित्व और क्रिया-कलाप बताया गया है। देखा जाता है कि प्रकाश में अपनी ही एक और छाया उत्पन्न हो जाती है और साथ-साथ रहती है। सूक्ष्म शरीरधारी छाया पुरुष की स्थिति सजीव छाया जैसी समझी जा सकती है। यह नामकरण इसी आधार पर किया गया है।

मूर्द्धन्य वैज्ञानिकों के सामने ऐंटीएटम—ऐंटीमैटर, ऐंटीयूनिवर्स का अस्तित्व एक चुनौती के रूप में खड़ा है। उसे अस्वीकार करते नहीं बनता। यदि उस अस्तित्व के तथ्य स्पष्ट हो जाते हैं और उसकी प्रतिविश्व गतितविधियों से मनुष्य का संबंध जुड़ जाता है, तो निश्चित रूप से एक जादुई दैत्य युग में हम सब जा खड़े होंगे। प्रतिपरमाणु की शक्ति अपने जाने-माने परमाणु की तुलना में अत्यधिक है। अपने परिचित संचार की तुलना में अपरिचित 'ऐंटीयूनिवर्स' की संपदाएँ क्षमता एवं विशालता बहुत बड़ी हैं। उसके संतुलन में यह अंतर पड़ जाए, तो देखते देखते 'ऐंटीयूनिवर्स' का महादैत्य अपने प्रत्यक्ष संसार को निगलकर हजम कर सकता है और हिरण्याक्ष की उस पौराणिक कथा का एक प्रत्यक्ष दृश्य उपस्थित हो सकता है, जिसमें वह महादैत्य, इस पृथ्वी को बगल में दबाकर पाताल लोक को भाग गया था।

छाया पुरुष और 'प्रतिविश्व' की चर्चा यहाँ यह समझने के लिए की गई है कि सूक्ष्म जगत् के समतुल्य अपने ही इर्द-गिर्द बिखरे हुए एक सूक्ष्म जगत् के अस्तित्व को समझने में सुविधा हो। इंद्रियों की पकड़ में न आने वाली यह दुनिया इतनी विलक्षण है कि उसकी हलचलों का दृश्य संसार पर भारी प्रभाव पड़ता है। पदार्थों, प्राणियों और परिस्थितियों पर उस सूक्ष्म जगत् की हलचलें आश्चर्यजनक प्रतिक्रिया उत्पन्न करती हैं। प्रयत्न-पुरुषार्थ के महत्त्व से इनकार नहीं किया जा सकता, पर यह भी एक तथ्य है कि अदृश्य जगत् का अतिघनिष्ट और अति प्रभावशाली संपर्क दृश्य जगत् से है।

जीवधारी की चेतना ब्रह्मांडव्यापी महाचेतना का एक अंश है। अंश और अंशी के गुण, धर्म समान होते हैं। अंतर विस्तार के अनुरूप क्षमता का होता है। हम सब चेतना के महासमुद्र में छोटी-बड़ी मछलियों की तरह जीवनयापन करते हैं। महाप्राण-ब्रह्म की सत्ता में ही अल्पप्राण जीव-अनुप्राणित होता है।

मैटर का—सूक्ष्मतम स्वरूप अब परमाणु नहीं रहा। उसके भीतर भी अनेक घटक स्वतंत्र इकाइयों के रूप में काम करते हैं। वे इलेक्ट्रॉन आदि के भीतर भी सूक्ष्म तत्त्व हैं। पदार्थ अंततः तरंगों न रहकर 'ऊर्जा' मात्र रह जाता है। यह ऊर्जा 'इकोलाजी' विज्ञान के अनुसार जड़ नहीं, विवेकयुक्त चेतन है। विज्ञान में पदार्थ का सूक्ष्मतम स्वरूप इन दिनों 'क्वांटा' के रूप में निर्धारित किया है, इसे चेतना और जड़ का सम्मिश्रित रूप कह सकते हैं। उसकी व्याख्या विचारशील ऊर्जा के रूप में की जाती है। अध्यात्म की भाषा में इसे अर्द्ध नारी-नरेश्वर कह सकते हैं—प्रकृति-पुरुष का सम्मिश्रण इस क्वांटा को कह सकते हैं। अनुमान है कि अगली पीढ़ी के वैज्ञानिक इस 'क्वांटा' का विश्लेषण करते-करते शुद्ध ब्रह्म तक जा पहुँचेंगे और वेदांत की तरह स्वीकार करेंगे कि सर्वत्र ब्रह्म-ही-ब्रह्म संव्याप्त है। चेतना का महा समुद्र ही सर्वत्र लहलहा रहा है। जड़ पदार्थ—दृश्य जगत् तो उसकी हिलोरें मात्र हैं।

जीव और ब्रह्म के मध्य आदान-प्रदान के सुदृढ़ सूत्र विद्यमान हैं। उनमें अवरोध आत्मा पर चढ़े हुए कषाय-कल्मषों के कारण उत्पन्न होता है। इन्हें हटाया जा सके, तो ब्रह्मांडीय चेतना और जीव चेतना के मध्य महत्त्वपूर्ण आदान-प्रदान चल पड़ते हैं। भौतिक अंश का भार बढ़ जाने से जीव प्रकृतिपरक हो जाता है, उसकी प्रवृत्ति भौतिक आकाशाओं और उपलब्धियों में ही सीमित हो जाती है। फलतः वह स्वल्प, सीमित और दरिद्र दिखाई पड़ता है। यदि जीव सत्ता को निर्मल रखा जा सके, तो उसकी सूक्ष्मता—ब्रह्म-तत्त्व से, सूक्ष्म जगत् से अपना घनिष्ठ संबंध स्थापित कर सकती है। यह आदान-प्रदान जिसके लिए भी संभव हुआ है, वह देवोपम स्तर की स्थिति बना सका है। ऐसे लोगों को स्थूल जगत् की अपेक्षा सूक्ष्म जगत् से अधिक महत्त्वपूर्ण अनुदान अधिक मात्रा में मिलने लगते हैं। वह संपदा व्यक्ति को सच्चे अर्थों में समुन्नत बनाती है। इस उपलब्धि के सहारे वह अपने संपर्क क्षेत्रों के असंख्यों का तथा समूचे संसार का महत्त्वपूर्ण हित साधन कर सकता है।

सूक्ष्म जगत् का अस्तित्व स्वीकार न करने की बात कुछ शताब्दियों पूर्व अनास्थावादियों की आग्रहपूर्वक कह सकने की स्थिति थी। तब विज्ञान और बुद्धिवाद का इतना विकास नहीं हुआ था। आज की स्थिति भिन्न है। एक के बाद एक तथ्य उभरता हुआ सामने आया है और उसने सूक्ष्म जगत् का—विश्व चेतना का प्रतिपादन किया है। तत्त्वदर्शी मनीषियों ने तो उसे दृश्य जगत् की तरह प्रत्यक्ष माना था और उसके साथ संपर्क बनाने का विशालकाय अध्यात्मवादी ढाँचा खड़ा किया था। लगता है कि वह दिन दूर नहीं जब अध्यात्म और विज्ञान सूक्ष्मता के क्षेत्र में मिल-जुलकर प्रवेश करेंगे और जड़-चेतन के क्षेत्र को एकाकार करके सर्वतोमुखी प्रगति का पथ-प्रशस्त करेंगे।

छाया पुरुष साधना की तरह हम स्थूल के साथ-साथ सूक्ष्म जगत् का भी ज्ञानवृद्धि एवं सुविधा संपदा के लिए उपयोग कर सकते हैं। दृश्य प्राणियों की तरह अदृश्य जगत् में विद्यमान

अशरीरी समर्थ आत्माओं के साथ संपर्क साध सकते हैं। जमीन पर लड़ी जाने वाली लड़ाई की तुलना में वायु सेना द्वारा लड़े जाने वाले युद्ध के परिणाम अधिक दूरगामी होते हैं। श्रम से ज्ञान का महत्त्व अधिक है। परमाणु के दृश्य अस्तित्व का मूल्य नगण्य है, किंतु उसके विस्फोट से उत्पन्न ऊर्जा का मूल्य अत्यधिक ही आँका जायेगा। दृश्य शरीर से अदृश्य आत्मा का महत्त्व कितना है—यह सर्वविदित है। स्थूल जगत् को प्रभावित करने वाले सूक्ष्म जगत् से संपर्क साध सकने की जो क्षमता विज्ञानमय कोश की साधना से मिलती है, उसे महत्त्वहीन नहीं कहा जा सकता।

अन्य कोशों की तरह विज्ञानमय कोश की सत्ता भी समुचे कायकलेवर में विद्यमान है, किंतु उसका प्रवेश द्वारा हृदय चक्र है। यह हृदय वह नहीं जो शरीर में रक्त का संचार करता है। यह हृदय तो छाती के बाँये हिस्से की पसलियों से पीछे रहता है। पर जिस हृदय चक्र को विज्ञानमय कोश का प्रवेश द्वार माना गया है, वह उस स्थान पर है, जहाँ छाती के दोनों ओर की पसलियाँ मिलती हैं तथा उसके तुरंत बाद उदर कोश आरंभ हो जाता है। सबसे नीचे की पसलियों के मिलन-स्थल पर एक गड़ढा-सा दिखाई देता है, उसी स्थान को हृदय चक्र कहा गया है।

इस केंद्र को कारण 'शरीर' का केंद्र भी बताया गया है। योग शास्त्रों में इसका उल्लेख करते हुए कहा गया है कि वह अंगुष्ठ मात्र आकार वाला प्रकाशमान अंग है। इसी प्रकार विज्ञानमय कोश के संबंध में कहा जाता है कि वह ब्रह्मांडव्यापी चेतना से जुड़ा है। हृदय चक्र उससे सीधा आदान-प्रदान करने में समर्थ है। इस चक्र को गुफा या गुहा भी कहा गया है। जिस प्रकार योगीजन विशिष्ट साधनाओं के लिए गुफा में प्रवेश करके सिद्धियाँ प्राप्त करते हैं। उसी प्रकार इस हृदय-गुफा में प्रवेश करके दिव्य उपलब्धियाँ प्राप्त की जाती हैं। बोलचाल की भाषा में हृदय शब्द का उपयोग संवेदनाओं के लिए किया जाता है। सहृदय का अर्थ कोमल भावनाओं वाला। हृदयहीन का अर्थ निष्ठुर। यह रक्त फेंकने वाली थैली के गुण नहीं, वरन् उस सचेतन हृदय तत्त्व के गुण हैं, जिसे

अध्यात्म की भाषा में हृदय चक्र, ब्रह्म चक्र कहा जाता है। यह विज्ञानमय कोश का प्रवेश द्वार है। इसी केंद्र को ध्यान-धारणा के सहारे जाग्रत् करके अति मानस स्तर का बनाया जाता है। अतीन्द्रिय क्षमता की दिव्य सिद्धियाँ प्राप्त करने के लिए साधना की आधारशिला यही है। अंतःकरण एवं अंतरात्मा का केंद्र संस्थान भी यही माना गया है। आत्म परिचय देते हुए प्रायः लोग छाती टोक कर अपने वर्चस्व का परिचय देते हैं। वे क्या करने जा रहे हैं इस संकल्प का परिचय देते हैं।

हृदय गुहा में प्रवेश करके आत्म साधना करने का निर्देश साधना शास्त्रों में इस प्रकार मिलता है—

**संत्यज्य हृद्गुहेशानं देवमन्यं प्रयन्ति ये।
ते रत्नमभिरवांछन्ति त्यक्त हस्तस्थ कौस्तुभाः॥**

—योग वासिष्ठ

जो हृदय रूपी गुहा में निवास करने वाले भगवान् को छोड़कर अन्यत्र ढूँढ़ता फिरता है, वह हाथ की कौस्तुभमणि छोड़कर, काँच ढूँढ़ते फिरने वाले मूर्ख के समान है।

**सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्यमध्ये विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम्।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति॥**

—श्वेताश्वतरोपनिषद् ४/१४

जो सूक्ष्म से भी अत्यंत सूक्ष्म, हृदय गुहा रूप गुह्य स्थान के भीतर स्थित संपूर्ण विश्व की रचना करने वाला, अनेक रूप धारण करने वाला तथा समस्त जगत् को सब ओर से घेरे रखने वाला है, उस एक अद्वितीय करुणास्वरूप महेश्वर को जानकर मनुष्य सदा रहने वाली शांति को प्राप्त होता है।

**एष देवो विश्वकर्मा महात्मा
सदा जनानां १० हृदये सन्निविष्टः।
हृदा मनीषा मनसाभिवृप्तो
य एतद्विदुर मृतास्ते भवन्ति॥**

—श्वेताश्वतरोपनिषद् ४/१७

यह देवता विश्व के बनाने वाले और महात्मा हैं, सदा लोगों के हृदय में सन्निविष्ट हैं। हृदय, बुद्धि और मन के द्वारा पहिचानते हैं जो इसे जानते हैं, वे अमृतत्व को प्राप्त करते हैं।

**सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म । यो वेद निहितं गुहायां परमे
व्योमन् । सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति ।**

—तैत्तिरीय २-१-१

जो हृदय गुह्य में अवस्थित, ज्ञानस्वरूप परमेश्वर को जानता है वह ब्रह्म के साथ ही सब भोगों का उपभोग करता है।

निहितं गुहायाममृतं विभ्राजमानमानन्द त पश्यन्ति ।।

—सुबालोपनिषद् ८-१

परंब्रह्म हृदय रूपी गुफा में रहने वाला है, वह अविनाशी और प्रकाश स्वरूप है। 'ज्ञानी' उसे आनंद रूप में अनुभव करते हैं और उसी में लीन हो जाते हैं।

पुरुष एवेदं विश्वं कर्म तपो ब्रह्म परामृतम् ।

एतद्यो वेद निहितं गुहायां सोऽविद्याग्रंथिं विकिरतीह सोम्य ।।

—मुंडकोपनिषद् २-१-१०

महर्षि अंगिरा ने कहा है कि प्यारे शौनक ! क्रिया, ज्ञान और नित्य वेद तथा सारा जगत् उसी परंब्रह्म के आधार से ठहरा हुआ है। बस जो मनुष्य उस ब्रह्म को अपनी हृदय रूपी गुहा में स्थित जानता है, वह अज्ञान की गाँठ को काट देता है, अर्थात् मुक्त हो जाता है।

न पातालं न च विवरं गिरीणां

नैवान्धाकारं कुक्षयो नोदधीनाम् ।

गुहा यस्यां निहितं ब्रह्म शाश्वतं

बुद्धिवृत्तिमतिशिष्टां कवयो वेदयन्ते ।।

—व्यास भाष्य

जिस गुफा में ब्रह्म का निवास है, वह न तो पाताल है, न पर्वतों की कंदरा, न अंधकार है और न समुद्र की खाड़ी। चेतन

से अभिन्न जो चित्त वृत्ति है, ज्ञानवान् लोग उसे ही 'ब्रह्म गुहा' कहते हैं।

**ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया ॥
तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात् परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥**

—गीता १८।६१, ६२

ईश्वर सब प्राणियों के हृद् देश में रहता है। वह अपने कौशल से सब प्राणियों को चलाता है। सर्व प्रकार से उसी की उपासना करो। उसकी कृपा से परम शांति, परम पद मिलता है।

हृदय चक्र की उपमा कमल पुष्प से दी गई है। इसे हृदय कमल भी कहते हैं। कमल का तात्पर्य यहाँ आकृति से कम और संवेदना से अधिक है। कमल-कौमलता का, सौंदर्य का, सुगंध का, सात्विकता का प्रतीक है। उसे पुष्पों में सर्वश्रेष्ठ माना गया है। अस्तु, चक्र को कमल की संज्ञा भी दी गई है।

आविः सन्निहितं गुहाचरन्नाम महत्पदमत्रैतत्समर्पितम्।

—मुंडकोपनिषद् २-२-१

वह ज्ञानियों के हृदय रूपी गुफा में प्रकट है, सदा सबके समीप रहता है, ज्ञानियों की बुद्धि में विद्यमान रहता है, वह सबसे बड़ा परम धाम है।

हृदिस्था देवताः सर्वा हृदि प्राणाः प्रतिष्ठिताः।

हृदि ज्योतिषि भूयश्च हृदि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥

—शंख स्मृति ७-१६

हृदय में सब देवताओं का, सब प्राणों का निवास है। हृदय में ही परम ज्योति है। सब कुछ उसी में ही विद्यमान है।

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः।

अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥

—कठोपनिषद् २-३-१४

जब मनुष्य के हृदय की सारी कामनाएँ नष्ट हो जाती हैं, तब यह मरणधर्मा मनुष्य मुक्त हो जाता है और मुक्ति दशा में ब्रह्म को प्राप्त करता है।

**दूरात्सुदूरे तदिहान्तिके च पश्यत्स्विहैव निहितं
गुहायाम् ॥**

—मुंडकोपनिषद् ३-१७

वह दूर से भी दूर है, तो भी वह बहुत पास है। ज्ञानी-योगियों के लिए वह यही हृदय गुफा में विराजमान है।

अंगुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति।

ईशानो भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते, एतद्वै तत् ॥

—कठोपनिषद् २-१-१२

वह सर्वत्र परिपूर्ण परमात्मा शरीर के हृदय स्थान-अंगुष्ठमात्र स्थान में लिंग शरीर सहित आत्मरूपेण रहता है। योगीजन उसकी प्राप्ति के लिए इसी स्थान पर ध्यान लगाते हैं। वह ईश्वर भूत और भविष्य सबका स्वामी है। जो मनुष्य उसको जान लेता है, वह फिर ग्लानि को प्राप्त नहीं होता।

हृदय चक्र में ध्यान करते समय अंगुष्ठ आकार की प्रकाश ज्योति का दर्शन साधकों को होता है। दीप शिखा जैसी वह जलती प्रतीत होती है। इस दिव्य दर्शन को आत्म-साक्षात्कार एवं ब्रह्म दर्शन का प्रतीक माना गया है। विज्ञानमय कोश की विशिष्ट साधनाओं द्वारा इस केंद्र में—हृदय चक्र में सन्निहित क्षमताओं का अभिवर्धन किया जा सकता है।

साधना के अनेक प्रकार हैं, उनमें से कुछ योगाभ्यास एवं तपश्चर्या स्तर के हैं। कुछ ऐसे हैं, जिनमें चरित्र निष्ठा एवं समाज निष्ठा से संलग्न रहकर चेतना के अंतराल को परिष्कृत किया जाता है। आत्म-निर्माण एवं लोक-निर्माण में आदर्शवादी श्रद्धा-सद्भावना को अपनाते हुए तत्पर रहा जाय, तो वे क्रिया-कलाप भी उच्चस्तरीय साधना का प्रयोजन पूरा करते हैं। चरित्र को स्वर्ण की तरह तपा लेना, संयम की अग्नि में अपने कषाय-कल्मषों को जला डालना, विशुद्ध तप-साधना ही है। अपने

स्वार्थो को परमार्थ में जोड़ देना, व्यष्टि को समष्टि में विलय कर देना, इसे योग ही कहा जायेगा। कितने ही महामानव अपनी जीवन-प्रक्रिया को उत्कृष्ट आदर्शवादिता में ढालकर एक प्रकार से संत ही बने रहे हैं, भले ही उनमें वैसी वेषभूषा धारण न की हो। ऐसे लोगों को भी विज्ञानमय कोश की साधना का परिपूर्ण लाभ मिलता रहा है।

साधना इस प्रकार से की गई या उस तरह, इसका कोई विशेष महत्त्व नहीं है। बात कर्मकांडों के विधि-विधानों की नहीं, अंतराल में आदर्शवादी उत्कृष्टता को प्रतिष्ठापित करने की है। उसे जिस प्रकार बो लिया जाय, अंकुर उगेगा और समयानुसार विशाल वृक्ष बनकर पल्लवित और फलित होगा।

साधना से सिद्धि का तात्पर्य यदि चमत्कारी कौतुक-कौतूहलों का प्रदर्शन और उस आधार पर कीर्ति संपादन हो, तो उस उपलब्धि को ओछे स्तर की विडंबना मात्र कहा जायेगा। इसीलिए लोक प्रचलन की यह मान्यता गलत ही कही जायेगी कि साधना की सफलता सिद्धि से आंकी जानी चाहिए। कितने ही महामानव लौकिक सफलता की दृष्टि से नितांत असफल रहे हैं। फिर भी उनकी सिद्धि पर उँगली उठाये जाने का कोई कारण नहीं बना।

महाप्रभु ईसा मसीह के जीवन में मात्र उनके तेरह शिष्य थे, और वे भी परीक्षा की घड़ियों में दुर्बल सिद्ध हुए। ईसा को फाँसी लगी, यह प्रत्यक्ष असफलता ही है, फिर भी उनकी महानता में इससे कोई अंतर नहीं आया। दधीचि के अस्थिदान से लेकर सुकरात के विष पान तक का लंबा इतिहास उनका है, जिन्होंने कष्ट उठाये और घाटे सहे। सीता से लेकर रानी लक्ष्मीबाई रानी तक की कथा-गाथाओं में असफलताओं का ही समावेश है। गुरु गोविंदसिंह से लेकर भगतसिंह तक की परंपरा अपनाने वाले को न सफल कहा जा सकता है और न सिद्ध। अस्तु, साधना से सिद्धि का तात्पर्य यदि लौकिक सफलता, चमत्कार या ख्याति के रूप में देखा जायेगा, तो उस परख-प्रक्रिया को खोटी कहनी पड़ेगी। हाँ,

आदर्शों की स्थापना में सफलता की बात कही जाय तो उसे तथ्यपूर्ण माना जायेगा। कितने ही महामानव ऐसे हुए हैं, जो जीवन भर कष्ट सहते रहे, घाटे में रहे, ठगे गये, पग-पग पर असफल हुए, तिरस्कृत एवं उपहासास्पद बने, फिर भी उन्होंने ऐसे आदर्शों की स्थापना की, जिनके पद-चिह्नों पर चलकर असंख्यों ने प्रकाश पाया, अपना जीवन धन्य बनाया। उच्चस्तरीय आध्यात्मिक साधना की यही सच्ची सिद्धि है कि उन कठिनाइयों की अग्निपरीक्षा में साधक खरा उतरे। प्रलोभन और भय उसे विचलित न कर सकें। दूसरों के लिए ऐसी परंपरा छोड़ें, जिसका अनुकरण करने वाले मनुष्य जन्म को सार्थक बना सकें। राजा हरिश्चंद्र का नाटक बचपन में गांधी जी ने देखा और वे उससे इतने प्रभावित हुए कि दूसरे हरिश्चंद्र ही बनकर रहे। महामानव साथियों के लिए, अगली पीढ़ियों के लिए, ऐसे ही अनुकरणीय उदाहरण छोड़कर जाते हैं। यही उनके स्मरणीय और सराहनीय अनुदान होते हैं। सच्चे अर्थों में साधना की सिद्धि यही है। जीवन साधना का योगाभ्यास उसी प्रकार की सिद्धियों से भरा-पूरा होता है।

संसार के महामानवों में से अधिकांश विपन्न परिस्थितियों और दरिद्र परिवारों में जन्मे। उन्हें न तो बड़े लोगों का परिचय-सहयोग प्राप्त था और न साधनों का। परिस्थितियों का भी ऐसा सुयोग प्राप्त नहीं था, जिसके सहारे प्रगति की संभावना सोची जा सके। सामान्य लोग उस स्थिति में किसी प्रकार जिंदगी की लाश ही ढोते हैं। किंतु जिनके व्यक्तित्व में सद्गुणों की संपदा भरी होती है, वे अपने साथियों का हृदय जीतते हैं, सहयोग खींचते हैं। साधन उनके पास दौड़ते चले आते हैं और प्रगति की संभावनाएँ विकसित होती चली जाती हैं। कुछ उदाहरण गिना देने की आवश्यकता नहीं। व्यक्तित्व की महानता, उत्कृष्ट चरित्र, उदात्त व्यवहार एवं परिष्कृत दृष्टिकोण के कारण ही उनकी चुंबकीय शक्ति प्रखर बनी है। उसी ने उन्हें ऐतिहासिक महामानवों की पंक्ति में खड़ा किया है। उनके व्यक्तित्व-उत्कर्ष और समाज को दिये अनुदानों का मूल्यांकन

करने से स्पष्ट हो जाता है कि उनसे साधना से सिद्धि का सिद्धांत पूरी तरह प्रमाणित कर दिया। जीवन साधना का योगाभ्यास ऐसा है जिसकी सिद्धि बाजीगरी, कौतुक जैसी चमक दिखाकर समाप्त नहीं होती, वरन् अद्भुत सफलताओं के रूप में—लोक श्रद्धा के रूप में इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों पर अंकित अक्षरों के रूप में, सदा-सर्वदा जीवंत बनी रहती है। ऐसे महामानवों की नामावली, जीवन चरित्र हम जीवन भर तैयार करते रह सकते हैं।

कौतूहलों की बात ही यदि 'सिद्धि' मानी जाए, तो सज्जनता से प्रभावित होकर दिव्य शक्तियों द्वारा अनुग्रह बरसाने की कथा-गाथाएँ पुराणों के पन्ने-पन्ने पर पढ़ी जा सकती हैं। हनुमान को राम का, अर्जुन को कृष्ण का अनुग्रह अकारण ही नहीं मिला था। अपनी पात्रता सिद्ध करके ही भगवान् के प्रिय पात्र और शक्ति-संपन्न बने थे। सुकन्या, सावित्री, अनुसूया, दमयंती, गांधारी आदि महिलाओं में दिव्य सामर्थ्य होने की कथाएँ बताती हैं कि उनसे कोई विशेष योगाभ्यास नहीं किये थे, वरन् उच्च चरित्र के आधार पर ही वे वैसे चमत्कार दिखाने में समर्थ हुईं, जो उनके चरित्रों में बताए जाते हैं। शबरी, सुदामा, कर्ण, अंबरीष, रैदास, कबीर, नानक, सूर, तुलसी, एकनाथ, रामदास, विवेकानंद, गांधी आदि की जीवन गाथाओं में योगाभ्यास का कम और लोक साधना का स्थान प्रमुख रहा है। फिर भी उन्हें दैवी अनुग्रह का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, यहाँ तक कि जटायु जैसे पक्षी और सेतुबंध के समय पुरुषार्थ करने वाली गिलहरी तक को भगवान् का प्यार प्राप्त हुआ था।

आत्मा अनन्य शक्तियों का भांडागार है। उसमें अपने उद्गम केंद्र परमेश्वर की समस्त शक्तियाँ बीज रूप में सन्निहित हैं। उन्हें उगाने और बढ़ाने के लिए चरित्र निष्ठा का खाद और उदार सेवा-साधना का पानी देना पड़ता है। इस नीति को अपनाकर कोई भी साधक बुद्धिमान् माली की तरह अपने अंतःक्षेत्र में ऋद्धि-सिद्धियों से भरा-पूरा उद्यान खड़ा कर सकता है। इसके लिए बाहर से कुछ

ढूँढ़ने, लाने या पाने की आवश्यकता नहीं है। मात्र कषाय-कल्मषों की परतों को हटा देने भर का साहस सँजो लेना पर्याप्त है। आत्म-शोधन और आत्मा का परिष्कार ही विभिन्न साधनाओं का वास्तविक उद्देश्य हैं। अंगारे पर चढ़ी राख की परत ही उसे धूमिल और निस्तेज बना देती है। यह परत हटते ही अंगारा फिर अपनी गर्मी और चमक का परिचय देने लगता है। निकृष्ट चिंतन और घृणित कर्तृत्व से यदि हाथ खींच लिया जाए, तो फिर आत्मिक प्रखरता के कारण उपलब्ध होने वाली असंख्य ऋद्धि-सिद्धियों के मार्ग में और कोई बड़ा व्यवधान शेष नहीं रह जाता।

इसके अतिरिक्त विज्ञानमय कोश के परिष्कार द्वारा जब जीव सत्ता का प्रत्यक्ष संबंध ब्रह्मांडीय चेतना से जुड़ने लगता है, तब तो और भी अनेक शक्तियाँ आ जाती हैं। इस तरह की सिद्धियों का वर्णन साधना शास्त्र में स्थान-स्थान पर मिल सकता है। विज्ञानमय कोश की जाग्रति के बाद प्राप्त होने वाली सफलताओं के संदर्भ में कुछ संकेत इस प्रकार मिलते हैं—

**वपुषः कातिरुत्कृष्टा जठराग्निविवर्धनम् ।
आरोग्यं च पटुत्वं च सर्वज्ञत्वं च जायते ॥
भूतं भव्यं भविष्यच्च वेत्ति सर्वं सकारणम् ।
अश्रुतान्यपि शास्त्राणि सरहस्यं वदेद् ध्रुवम् ॥
वक्त्रे सरस्वती देवी सदा नृत्यति निर्भरम् ।
मंत्र सिद्धिर्भवेत्तस्य जपादेव न संशयः ॥**

—शिव संहिता ८७-८८-८९

आत्म साधना से शरीर में उत्तम कांति उत्पन्न होती है। जठराग्नि बढ़ती है, शरीर निरोग होता है, पटुता और सर्वज्ञता प्राप्त होती है तथा सब वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त होता है।

भूत, भविष्य और वर्तमान काल की सब वस्तुओं के कारण का ज्ञान होता है। जो शास्त्र सुने नहीं है उनके रहस्य जानने तथा व्याख्या करने की शक्ति प्राप्त होती है।

उस योग साधक की जिह्वा पर सरस्वती नृत्य करती और मंत्र आदि सरलतापूर्वक सिद्ध होते हैं।

यथा वा चित्तसामर्थ्यं जायते योगिनोधुवम्।

दूरश्रुतिर्दूरदृष्टिः क्षणाद्दूरागमस्तथा ॥

वाक्सिद्धिः कामरूपत्वमदृश्यकरणी तथा।

—योग तत्त्वोपनिषद् ७३-७४

जैसे-जैसे चित्त की सामर्थ्य बढ़ती है, वैसे-वैसे दूर श्रवण, दूर दर्शन, वाक् सिद्धि, कामना पूर्ति, आदि अनेकों दिव्य सिद्धियाँ मिलती चली जाती हैं।

आसनेन रुजो हन्ति प्राणायामेन पातकम्।

विकारं मानसं योगी प्रत्याहारेण सर्वदा ॥

धारणाभिन्नधैर्यं च ध्यानादेश्वर्यमुत्तमम्।

समाधौ मोक्षमाप्नोति त्यक्तकर्मशुभाशुभः ॥

—वशिष्ट संहिता

आसन से रोग, प्राणायाम से पातक, प्रत्याहार से मनोविकार दूर होते हैं और धारणा से धैर्य, ध्यान से ऐश्वर्य और समाधि से मोक्ष प्राप्त होता है। कर्म बंधन कटते हैं।

ऊहः शब्दोऽध्ययनं दुःखविधातास्त्रयः सुहृत्प्राप्तिः।

दानं च सिद्धयोऽष्टौ सिद्धेः पूर्वाऽङ्कुशस्त्रिविधः ॥

—सां० का० ५१

ऊह, शब्द, अध्ययन, सुहृद प्राप्ति, दान, आध्यात्मिक दुःखहीन, आधिदैविक दुःखहीन यह आठ सिद्धियाँ हैं।

- (१) ऊह सिद्धि अर्थात् पूर्व जन्म के स्वरूप का ज्ञान।
 (२) शब्द सिद्धि अर्थात्—शब्दों का ठीक तात्पर्य समझना।
 (३) अध्ययन सिद्धि—अध्ययन में अभिरुचि और उससे प्रकाश ग्रहण करने की क्षमता (४) सुहृत्प्राप्ति अर्थात् भावनाशील मित्र की प्राप्ति। (५) दान सिद्धि—उदार स्वभाव एवं परमार्थपरायण प्रवृत्ति।
 (६) आध्यात्मिक दुःखों का नाश (७) आधिदैविक दुःखों का नाश।

(८) आधिभौतिक दुःखों का नाश जिससे हो सके—ऐसी विवेक दृष्टि की प्राप्ति।

करामलकवद्विश्वं तेन योगी प्रपश्यति।
 दूरतो दर्शनं दूरश्रवणं चापि जायते॥
 भूतं भव्यं भविष्यं च वेत्ति सर्वं सकारणम्।
 ध्यानमात्रेण सर्वेषां भूतानां च मनोगतम्॥
 अंतर्लीनमना योगी जगत्सर्वं प्रपश्यति।
 सर्वगुप्तपदार्थानां प्रत्यक्षत्वं च जायते॥

—योग रसायन

योगी को अदृश्य जगत् दृश्यवत् दीखता है। उसे दूर दर्शन, दूर श्रवण आदि की सिद्धियाँ उपलब्ध रहती हैं। ध्यान मात्र से योगी भूत भविष्य, वर्तमान तथा प्राणियों के मनोगत भाव जान लेता है।

अंतर्लीन मन द्वारा योगी विश्व के गुप्त पदार्थों एवं रहस्यों को प्रत्यक्षवत् देख और जान लेता है।



आनंदमय कोश—समाधि, स्वर्ग और मुक्ति का द्वार

मानवी सत्ता के पाँच आवरण, जीव सत्ता के पाँच कोशों में सबसे अंतिम और सबसे महत्त्वपूर्ण है—आनंदमय कोश। इस कोश का अनावरण होने पर जीव सत्ता परमात्म सत्ता के निकट ही नहीं पहुँच जाती बल्कि उससे जुड़कर स्वयं परमात्मा स्वरूप ही हो जाती है। आत्म सत्ता को परमात्मा सत्ता का ही स्फुलिंग कहा गया है। उसका मूल स्वरूप सत्य, शिव, सुंदर कहा जाता है और परमात्म सत्ता की व्याख्या सत्, चित्, आनंद रूप में होती है। दोनों ही स्थितियाँ परम सुखद हैं। उद्देश्य है जीवन को सुखद, संतोषजनक और आनंदमय होना चाहिए।

आनंदमय कोश की सिद्धि के द्वारा कोई भी व्यक्ति आत्म-बोध एवं आत्म जाग्रति की स्थिति प्राप्त कर अपनी गरिमा को देवात्मा-परमात्मा स्तर की बना सकता है। उस स्थिति को प्राप्त कर वह उतना ही गौरवान्वित रह सकता है, जितना कि देव सत्ता एवं परमात्म सत्ता अपने को अनुभव करती होगी। यह अध्यात्म दृष्टिकोण ही अमृत है। इसे प्राप्त करने पर अजरता, अमरता, प्रौढ़ता, सुंदरता, प्रखरता की दिव्य विभूतियाँ हर घड़ी अपने को अमृतत्व का मिठास देती रहती हैं।

जीव साधारणतया सीमाबद्ध रहता है। उसकी ज्ञानेंद्रिय सीमित रसास्वादन दे पाती है और कर्मेंद्रियों द्वारा सीमित संपदा का उपार्जन हो सकता है। किंतु मनुष्य के अंतराल में बीज रूप में इतनी संभावना भरी पड़ी है, जितनी कि इस ब्रह्मांड में गुप्त या प्रकट रूप में विद्यमान हैं। स्थूल जगत् कलेवर है, सूक्ष्म जगत् उसका प्राण है। कलेवर से प्राण की क्षमता अधिक ही होती है। दृश्यमान पदार्थों की तुलना में ताप, ध्वनि, विद्युत्, ईथर आदि की

अदृश्य शक्तियाँ अधिक प्रबल हैं। इस अदृश्य प्रकृति से भी सूक्ष्म जगत् की समर्थता असंख्य गुनी बढी-चढी है। उसके साथ संबंध बना लेने—उस क्षेत्र में प्रवेश पा लेने की सामर्थ्य प्राप्त कर सकने के पश्चात् सीमा-बंधन समाप्त हो जाते हैं और असीम सामर्थ्य का उदय होता है। अतीन्द्रिय संभावनाएँ ही अपने सामने हैं। उनके कुछ कौतुक ही कभी-कभी देखने को मिलते और चकित करते रहते हैं। यदि सचमुच उस क्षेत्र में कुछ अधिक प्रवेश मिल सके—दिव्य विभूतियों का उपार्जन एवं उपयोग जाना जा सके, तो उसकी विलक्षणता सिद्ध पुरुषों जैसी हो सकती है। तब मनुष्य में देवत्व का उदय और नर में नारायण का दर्शन हो सकता है। यह परम आनंद की स्थिति ही होगी।

उपरोक्त कथन का तात्पर्य यह है कि बाह्य जगत् और अंतर्जगत् के दोनों ही क्षेत्र असीम दिव्य संवेदनाओं से भरे पड़े हैं। उनकी सुखद संवेदनाओं का अंत नहीं। वस्तुस्थिति यही है। अपनी भ्रांतियों में उलझकर उपलब्धियों का लाभ नहीं लिया—यह दूसरी बात है। कस्तूरी का मृग नाभि में सुगंध के भंडार को समझ नहीं पाता, वह उसे बाहर ढूँढता है और प्राप्त करने के प्रयास में जितनी ही भाग-दौड़ करता है, उतना ही थकता और निराश होता है। इस दुर्भाग्य पर दाता को दोष नहीं दिया जा सकता। उसने तो कस्तूरी प्रचुर मात्रा में—निकटतम स्थान नाभि में ही भर दी, करतलगत उपलब्धियों का लाभ लेने में भी बुद्धि समर्थ न हो सके, तो कोई क्या करे ? मृगतृष्णा के भटकाव में प्रकृति का नहीं, कुछ-का-कुछ देखने और समझने वाले का ही दोष है।

परमेश्वर ने अपने जेष्ठ पुत्र राजकुमार मनुष्य को अपने इस दिव्य उद्यान में, संसार में आनंद लेने के लिए भेजा है। यहाँ आनंद की संभावनाएँ एवं सुविधाएँ मौजूद हैं। दुःख तो हमारे विकृत दृष्टिकोण और निकृष्ट क्रिया-कलाप की प्रतिक्रिया मात्र है। यहाँ सुख, स्वाभाविक और दुःख कृत्रिम है। परमात्मा ने मनुष्य को अपने इस सुरम्य उद्यान में दुःख भोगने के लिए नहीं, आनंद पाने और आनंद बिखेरने के लिए भेजा है। इस संसार को अधिक सुंदर,

समुन्नत, समृद्ध एवं सुसंस्कृत बनाने के प्रयास में संलग्न रहकर, वह अपने ईश्वर प्रदत्त आनंद को, अपने उपार्जन को जोड़कर अधिकाधिक सुखी, आनंदित रह सकता है। इसके लिए कोई बड़ा कदम नहीं उठाना पड़ता। इसके लिए मात्र अपनी दुर्बुद्धि का निराकरण और दुष्प्रवृत्ति का निवारण पर्याप्त होता है। आनंद मनुष्य की पैतृक संपत्ति है। वह उसे उत्तराधिकार में—प्रचुर परिमाण में मिली है। उपलब्धियों का स्वरूप समझना और उनका सदुपयोग करना जानना चाहिए। जिनसे इतना भी नहीं बन पड़ता, उन्हें दुर्बुद्धिजन्य दयनीय दुर्दशा में ही पड़ा हुआ माना जायेगा।

परमात्मा आनंद स्वरूप है। जीवसत्ता के कण-कण में आनंद का स्रोत है। प्रकृति में सौंदर्य और सुविधा प्रदान करने की विशेषता भरी पड़ी है। यहाँ सर्वत्र आनंद-ही-आनंद है। इसी से जीवन को 'आनंदमय' कहा गया है। यह कोश उसे असीम मात्रा में, सहज-सुखद रूप से उपलब्ध है। हम आनंदमय लोक में रह रहे हैं।

दुर्भाग्य लगभग वैसा ही है, जैसा कि कबीर की एक उलट-बासी में व्यक्त किया गया है। वे कहते हैं—

पानी में मीन पियासी।

मोहि लखि-लखि आवै हाँसी।।

कोई व्यक्ति अपने घर का ताला बंद करके कहीं चला जाए। लौटने पर ताली गुम हो जाने से बाहर बैठा ठंड में सिकुड़े और दुःख भोगे। ठीक ऐसी ही स्थिति हमारी तिजोरी की ताली गुम हो जाने से दैनिक खर्च में कठिनाई पड़ रही है और भूखा-नंगा रहना पड़ रहा है। आनंदमय कोश अपने भीतर भरा पड़ा है, किंतु रहना पड़ रहा है निरानंद स्थिति में, कैसी विचित्र स्थिति है ? कैसी विडंबना है ? यह अपने साथ अपना कितना विलक्षण उपहास है ?

आनंदमय कोश की साधना इसी दुःखद दुर्भाग्य का अंत करने के लिए है। उसके आधार पर ताले को खोला जा सकता है, जिसमें उल्लास का अजस्र भांडागार भरा पड़ा है। यह कार्य आत्मा और परमात्मा के मिलन की विधि-व्यवस्था बनाकर—रीति-नीति

अपनाकर ही संभव हो सकता है। पंचकोशों की साधना के उच्चस्तर पर पहुँचकर इसी ताले को ढूँढ़ना पड़ता है और ताले को खोलने की व्यवस्था बनानी पड़ती है। जो उसे कर सका, उसे फिर यह नहीं कहना पड़ा कि हम निरानन्द-नीरस जीवन जीते हैं। दुःख और दुर्भाग्य से ग्रसित हैं।

इस दुःख-दुर्भाग्य का अंत आनन्दमय कोश के अनावरण करने पर ही हो सकता है। उस कोश में प्रवेश करके ही जीवात्मा को परम तृप्ति का संतोष मिल सकता है। यही जीवन का लक्ष्य भी है और इसी की आशा पर प्राणी जीवित है। कहना चाहिए, आनन्द की प्राप्ति के लिए ही जीव शरीर बंधन में बँधने को तैयार हुआ है। कहा भी गया है—

एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति

—वृहदारण्यक ४।३।३२

इस आनन्द के प्राप्त होने की आशा से ही समस्त प्राणी जीवित रहते हैं।

आनंदो ब्रह्मेति व्यजानात्। आनंदाद्भवेव खल्विमानि भूतानि जायंते। आनंदेन जातानि जीवन्ति। आनंदं प्रयन्त्यभिसं विशन्तीति।

—तैत्तिरीयोपनिषद् ३/६/१

आनन्द से सब प्राणी पैदा होते हैं और आनन्द में ही वे जीवित रहते हैं। अंत में आनन्द में ही वे जय को प्राप्त होते हैं।

आनंदानुभवस्तत्र जायते योगिनो महान्।

स एव तं विजानाति मया वक्तुं न शक्यते।।

—योग रसायनम् ११४

उस समय योगी को महान् आनन्द का अनुभव होता है, जिसे वही जानता है, मैं वर्णन नहीं कर सकता।

मुच्यमानेषु सत्वेषु प्रापुर्यान् मोदसागरान्।

तैरेवननुपर्याप्तं मोक्षेणारसिकेन किम्।।

—बोधिचर्यावतार ७।१०८

जीव जब दुःख बंधन से मुक्त होते हैं, तब उससे बोधिसत्व के हृदय में जो आनंद का समुद्र उमड़ पड़ता है, उतना ही तो पर्याप्त है। रस हीन शुष्क मोक्ष से क्या प्रयोजन ?

रसो वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वानंदी भवति। को ह्येवान्यात् कः प्राण्यात्। यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्। एष ह्येवानन्दयाति ॥

—तैत्तिरीय० २।७।१

भगवान् रसमय या रस-स्वरूप है। उसी रस को पाकर मनुष्य आनंद का अनुभव करता है। यदि वह आकाश की भाँति, सर्वत्र ओत-प्रोत आनंदमय मूलतत्त्व न होता, तो कौन अपान और कौन प्राण-रूप क्रियाओं से युक्त जीवन-मात्र में आनंद का अनुभव करता ? वास्तव में वही तत्त्व प्रत्येक प्राणी के आनंद का मूल स्रोत है।

परमेश्वर को रस कहा गया है। यह रस भौतिक नहीं आत्मिक है। उसे उल्लास, संतोष, तृप्ति, शांति जैसी दिव्य संवेदनाओं में अनुभव किया जाता है। इसकी उपलब्धि आंतरिक उत्कृष्टता के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई है। अंतरात्मा जितना पवित्र और उदात्त बनता जाता है, उसी अनुपात से यह आनंद बढ़ता है। यह उत्कृष्ट दृष्टिकोण तथा उच्चस्तरीय कर्मपरायणता पर निर्भर है। निकृष्ट चिंतन और भ्रष्ट क्रिया-कलाप के रहते अन्य किसी उपाय से इस आनंद का दर्शन हो नहीं सकता। आनंद की आकांक्षा करने वाले हर व्यक्ति को आनंदमय कोश की गहराई में उतरकर उस उद्गम स्रोत तक पहुँचना पड़ता है, जहाँ से दिव्य आनंद की प्रकाश किरणें फूटती हैं।

सृष्टि में यों कुरूपता भी विद्यमान है और मनुष्य में तामसिकता के अंश भी मौजूद हैं। उसे बदलने और सुधारने के लिए रचनात्मक प्रवृत्ति की आवश्यकता है। असहयोग, विरोध और दंड जैसे कटुकृत्यों का निषेध नहीं है, पर वे द्वेष और घृणा से प्रेरित नहीं, सुधार की हित कामना से होने चाहिए। इस प्रकार संसार के अशुभ पक्ष से निपटते हुए भी आंतरिक उत्कृष्टता

स्थिर रखी जा सकती है। श्रेष्ठता का पक्ष तो अधिक मात्रा में है ही, अंधकार से प्रकाश इस संसार में अधिक है। दुष्टता की तुलना में श्रेष्ठता कम नहीं है। उसी को खोजा, अपनाया जाय, संपर्क संबंध उसी से साधा जाय और उसी के अभिवर्धन—परिपोषण में निरत रहा जाए, तो मस्तिष्क में निरंतर सात्त्विक उत्साह छाया रहेगा। सौंदर्य दृष्टि विकसित होने पर विश्वव्यापी सौंदर्य का दर्शन होने लगेगा। पदार्थों और प्राणियों में पाई जाने वाली श्रेष्ठता के संपर्क में आने से शिवत्व की झाँकी मिलती है। इस विश्व के मूल में ब्रह्म सत्ता ही आलोकित है। यह समझने वालों को 'सत्य' की प्राप्ति होती है। परिष्कृत दृष्टिकोण वालों को सत्यं शिवं सुंदरम् का दर्शन हर घड़ी होता है और सर्वत्र स्वर्ग की उपस्थिति प्रतीत होती है।

संत इमर्सन कहा करते थे कि, "मुझे नरक में भेज दो मैं अपने लिए वही स्वर्ग बना लूँगा।" इस कथन में परिपूर्ण तथ्य भरा पड़ा है। परिष्कृत दृष्टि से समीपवर्ती वातावरण में भी बहुत कुछ सुधारात्मक अनुकूलता उत्पन्न की जा सकती है, किंतु स्थिति से अनुकूल प्रतिक्रिया उपलब्ध कर सकना तो पूर्णतया अपने हाथ की बात है। स्वर्ग इस दिव्य दर्शन का—उत्कृष्ट चिंतन का नाम है। उसे कोई स्थान विशेष नहीं माना जाना चाहिए, वह वस्तुतः एक दृष्टिकोण भर है। नरक और स्वर्ग को निकृष्ट एवं उत्कृष्ट चिंतन की अशुभ एवं शुभ प्रतिक्रिया ही समझा जाना चाहिए। हर व्यक्ति इमर्सन की तरह ही अपने लिए सुखद स्वर्ग का सृजन दृष्टिकोण को परिष्कृत करके सहज ही कर सकता है।

आनंदमय कोश की अगली उपलब्धि है—मोक्ष। मोक्ष अर्थात् बंधन-मुक्ति। बंधन अर्थात् पिछड़ेपन के कुसंस्कार, कषाय-कल्मष। जीव को बाँध सकने वाली संसार की और कोई शक्ति नहीं है। उसकी निज की दुर्बलताएँ और निकृष्टताएँ ही प्रगति के पथ पर बढ़ चलने से रोकने वाली सबसे बड़ी बाधाएँ हैं। मकड़ी अपना जाल आप बुनती और उसी में फँसी रहती है। रेशम के कीड़े भी अपना बंदीगृह आप बनाते हैं। मनुष्य के भव-बंधन उसी ने अपने

हाथों विनिर्मित किये हैं और स्वयं ने ही उन्हें हथकड़ी-बेड़ी की तरह धारण किया है। भेड़ों के झुंड में पले सिंहशावक की तरह ओछेपन का आवरण अपने ही अज्ञान से हमने ओढ़ा है। बंधनों का कितना कष्ट होता है ? इसे पशु-पक्षी तक जानते हैं जो विवशता में तनिक भी कमी आने पर बेतरह भाग खड़े होते हैं, भले ही उन्हें कितने ही अभाव और संकटों का सामना क्यों न करना पड़े ?

मनुष्य ईश्वर का सबसे बड़ा राजकुमार है। उसकी संभावनाएँ असीम हैं। उपलब्ध साधनों का सदुपयोग करके वह इसी जीवन में उतनी उच्च स्थिति में पहुँच सकता है, जिसे देवात्मा-परमात्मा के समतुल्य कहा जा सके। इस प्रगति में परिस्थिति की नहीं, मनःस्थिति की प्रधान बाधा है। यदि जीवन की सार्थकता के लिए जो करना है, उसे समझ और अपना लिया जाए, तो फिर वह स्थिति बन जायेगी, जिसे ईश्वर की समीपता कहते हैं। मोक्ष इसी का नाम है।

मोक्ष के संबंध में विचित्र मान्यताएँ प्रचलित हैं। कोई उसे जन्म-मरण के आवागमन से छुटकारा बताता है। कोई इस संसार को छोड़कर किसी अन्य लोक में चले जाने की कल्पना करता है। किसी को काम न करने की, बैठे-ठाले हर इच्छा पूरी होते रहने की स्थिति मोक्ष प्रतीत होती है। किन्हीं-किन्हीं की उड़ान विचित्र है, वे भगवान् का कोई विशेष नगर, ग्राम, लोक मानते हैं और उनके पास दरबारियों की तरह या बिराजने की कल्पना करते हैं। सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य—ये चार स्थिति मुक्ति में मिलने की बात बताई जाती हैं। सालोक्य का मतलब है, भगवान् के लोक में अपने लिए भी एक फ्लैट बन जाना। सामीप्य का मतलब है, उनके दरबारी-कर्मचारियों में नियुक्त होना। सारूप्य का अर्थ है, भगवान् जी की डमी कापी बनकर रहना। सुरक्षा के लिए डिक्टेटर लोग प्रायः अपनी ही शकल-सूरत का एक दूसरा आदमी रखते भी थे, जिसे खतरे के स्थान पर भेजकर वे स्वयं सुरक्षित रह सके। सायुज्य का तात्पर्य है—साझीदारी। उनकी संपत्ति अथवा सत्ता में अपनी घुस-पैठ बन पड़ना, यह सायुज्य मुक्ति कही जायगी। यह

सभी उपहासास्पद बाल-कल्पनाएँ हैं। इन्हें आलंकारिक वर्णन के रूप में प्रस्तुत किया गया है, पर उदाहरणों को तथ्य मान लेने की भूल अपना ली गई।

मोक्ष का तात्पर्य है—आत्मसत्ता को भौतिक न मानकर विशुद्ध चेतना तत्त्व के रूप में अनुभव करने लगना। सुखानुभूति, प्रसन्नता एवं सफलता भौतिक साधनों से मिलने के स्थान पर आंतरिक परिष्कार के आधार पर उपलब्ध होने के तथ्य पर विश्वास करना। पशु-प्रवृत्तियों की कुसंस्कारिता से छूटकर मानवी, दैवी संस्कृति को व्यवहार में उतारना। उत्कृष्टता ही ईश्वर है। ईश्वर की समीपता अथवा प्राप्ति का मतलब है, अपनी आकांक्षाओं, चेष्टाओं, दिशाधाराओं को उत्कृष्टता के साथ अविच्छिन्न रूप से जोड़ देना। लोक-मानस, लोक-प्रवाह जिस स्वार्थ एवं पतन की, दशा में बहता चला जा रहा है। उस विवशता से अपने को मुक्त कर लेना—मछली की तरह धार को चीरते हुए उलटे प्रवाह में चलना। यह अंतःस्थिति जिसे भी प्राप्त हो, उसे बंधन-मुक्त कह सकते हैं। मोक्ष अथवा मुक्ति को जीवन का परम फल बताया गया है। उसका स्वरूप यही है।

मरने के बाद स्वर्ग या मुक्ति का लाभ मिल सकता है। ये उपलब्धियाँ इसी जीवन की हैं। इनका आनंद इसी जीवन में—आज ही मिलना चाहिए। यह सब कुछ दृष्टिकोण के— आंतरिक स्तर के परिवर्तन पर निर्भर है। मुक्ति जीवित रहने पर ही मिलती है। मरने के बाद जो कुछ हाता है, वह जीवित स्थिति की प्रतिक्रिया भर कही जा सकती है। अस्तु, आत्मिक प्रबल पुरुषार्थ की सुखद उपलब्धि इसी जीवन में मिलने की बात सोचनी चाहिए। जीवित रहते ही यह स्थिति मिलती है, इसलिये उसे 'जीवनमुक्ति' भी कहा जाता है। मुक्ति, जीवन मुक्ति का ही संक्षेप है। निकृष्टता से—ओछेपन से छुटकारा पाने वाला कोई भी व्यक्ति इसी जीवन में मुक्ति का आनंद ले सकता है। इस संदर्भ में शास्त्रकारों का अभिमत अग्र प्रकार है—

उद्वेगानंदरहितः समया स्वेच्छया धिया ।
न शोचति न चोदेति स जीवन्मुक्त उच्यते ॥

—महोपनिषद् २। ५७

जो उद्वेग और आनंद से रहित, शोक अथवा हर्षोत्साह के ममत्व से रहित एवं स्वच्छ बुद्धि वाला है, वह जीवन्मुक्त है।

घृणा शंका भयं लज्जा जुगुप्सा चेति पंचमी कुलं शीलं
च शक्तिश्चाष्टौ पाशाः प्रकीर्तिताः। पाशबद्धः पशुः प्रोक्तोः
पाशमुक्तः सदाशिवः ॥

—तंत्र कौस्तुभ

घृणा, शंका, भय, लज्जा, जुगुप्सा, कुल, शील, शक्ति—ये आठ पाश हैं। जो इनमें बँधा है सो पशु है और जो मुक्त है सो शिव है।

मौनवान् निरहंभावो निर्मानो मुक्त मत्सरः ।
यः करोति गतोद्वेगः स जीवन्मुक्त उच्यते ॥

—महोपनिषद् २। ५०

जिसने अहंकार के भाव का परित्याग कर दिया है, मान-मत्सर के विकार से मुक्त हो गया है, जो उद्वेगरहित होकर कर्म में रत है, उसे ही ज्ञानीजन जीवन्मुक्त कहते हैं।

यः समस्तार्थं जालेषु व्यवहार्यपि निस्पृहः ।
परार्थेष्विव पूर्णात्मा स जीवन्मुक्त उच्यते ॥

—महोपनिषद् २। ६२

विश्व के सभी अर्थ—जालों के मध्य स्थिर होकर भी पराये धन से निस्पृह रहने वाले धर्मात्मा के समान जो पुरुष निस्पृह रहता है, वह आत्मा में ही पूर्णता का अनुभव करने वाला महात्मा जीवन्मुक्त है।

द्वे पदे बंधमोक्षाय निर्ममेति ममेति च ।
ममेति बध्यते जंतुर्निर्ममेति विमुच्यते ॥

—महोपनिषद् ४। ७२

बंधन और मोक्ष में केवल दो पद का अंतर है। मेरा है, यही बंधन है; मेरा नहीं है, यही मुक्ति है।

इस प्रकार दृष्टिकोण का परिष्कार हो जाने पर आनंद का स्वरूप, आधार और स्थान विदित हो जाने पर मान्यता स्थिर होती है। क्या करने से क्या मिलता है ? यह निश्चित हो जाना ही अज्ञानान्धकार का निवारण तथा वस्तुस्थिति का ज्ञान ही तत्त्वज्ञान है। आत्मिक समस्या ही सबसे बड़ी समस्याएँ हैं। उन्हीं के समाधान से वास्तविक समाधान होता है। अस्तु, इसी को ब्रह्मज्ञान, तत्त्वज्ञान, सद्ज्ञान आदि के नाम से पुकारते हैं। आनंद प्राप्ति के लिए सर्वप्रथम इसी आंतरिक समाधान और दिशा निर्धारण का प्रयत्न करना पड़ता है। समाधि इसी स्थिति का नाम है। आनंद की उपलब्धि में सर्वप्रथम इसी का प्रयत्न किया जाता है। यों समाधि बहुत ऊँची योग स्थिति है पर उसका आरंभ—अभ्यास यहीं से आरंभ करना पड़ता है।

इस समाधि का अभ्यास होने पर बिखराव-भटकाव समाप्त होता है और चिंतन तथा कर्म का समुचित लाभ मिल सकने की स्थिति बन जाती है, इसलिए आनंदमय कोश की साधना के प्रथम चरण में, समाधिपरक प्रयोग किये जाते हैं। यह जाग्रति समाधि है। इसमें मूर्च्छित होने की आवश्यकता नहीं पड़ती, वरन् प्रलोभन एवं भय की उत्तेजनाओं को शांत करना पड़ता है। एषणाओं के आवेश टंडे पड़ने पर मनुष्य अपना लक्ष्य देख पाता है। निर्धारित दिशा में चल पड़ने की बात इससे पूर्व बन ही नहीं पड़ती। आनंदमय कोश के साधकों को जिस एकाग्रता की आवश्यकता बताई गई है, वह एक केंद्र पर सोचते रहने की मानसिक विधि नहीं, वरन् लक्ष्य का सुनिश्चित निर्धारण और अभिगमन है। ऐसी मनःस्थिति को 'समाधिस्थ' कहा गया है।

‘सम्यगाधीयत एकाग्री क्रियते विक्षेपान्परिहृत्य मनो यत्र स समाधिः।

—भोज

जिसमें मन को विक्षेपों से हटाकर यथार्थ में एकाग्र किया जाता है, वह स्थिति समाधि है।

त्यक्त्वां विषयभोगांश्च मनोनिश्चलतां गतम् ।

आत्मशक्तिस्वरूपेण समाधिः परिकीर्तितः ॥

—दक्षस्मृति ७।२१

विषय भोगों की चंचलता त्यागकर जिसने स्थिर मनःस्थिति प्राप्त कर ली, आत्मबल प्राप्त कर लिया उसकी स्थिति 'समाधि' की ही है।

सलिले सैधवं यद्वत्साम्यं भवति योगतः ।

तथाऽऽत्ममनसोरैक्यं समाधिरभिधीयते ॥

—सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषद्-१४

जैसे लवण जल में मिलने से जल के रूप को प्राप्त हो जाता है वैसे ही आत्मा एवं मन का एक रूप होना समाधि कहलाता है।

समाधिः समतावस्था जीवात्मपरमात्मनोः ।

संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्मपरमात्मनोः ॥

—याज्ञवल्क्य

जीवात्मा और परमात्मा की इच्छा एवं दिशा जब एक जैसी होती है। वे वियोग से हटकर एकत्व स्थापित करते हैं, तो उस स्थिति को समाधि कहते हैं।

यत्समत्वं तयोरत्र जीवात्मापरमात्मनोः ।

समस्तनष्टसंकल्पः समाधिरभिधीयते ॥१६॥

स्वयमुच्चलिते देहे देही नित्यसमाधिना ।

निश्चलं तं विजानीयात् समाधिरभिधीयते ॥१७॥

—सौभाग्य० उपनिषद् २।१६-१८

ललक और लिप्साओं की आकांक्षाएँ नष्ट होने पर जब जीव और ब्रह्म के बीच एक दिशा का—एकता का निर्धारण होता है, तो उस स्थिति को समाधि कहते हैं। प्रलोभनों की चंचलता शिथिल होने पर जो आत्म स्थिरता प्राप्त होती है, वह समाधि है।

आंतरिक दिव्य क्षमताओं का विनाश तो तृष्णाजन्य चंचलता से होता है। यदि वह उद्विग्नता न रहे, लक्ष्य की ओर चलने का निश्चित संकल्प बन जाए, तो अपव्यय रुकने से आत्म-शक्ति का संग्रह और अभिवर्धन होता चलता है। फलतः कितनी ही प्रकार की दिव्य क्षमताएँ उभरती चली जाती हैं। इन विभूतियों का परिचय कितने ही रूपों में मिलता रहता है। यथा—

समाध्यभ्यासतो नित्यं जायतेऽन्तर्मनोलयः।

अंतर्दृष्टिप्रकाशश्च तस्य संजायते क्रमात्॥

—योग रसायन

समाधि के नित्य अभ्यास से क्रमशः मन अंतर्लीन हो जाता है और अंतर्दृष्टि प्रकाशित होती है।

स्वप्नदृष्टपदार्थो मृषा भवति निश्चितम्।

समाधौ त्वमृषा सर्वं वस्तु कार्यकरं तथा॥

—योग रसायन

स्वप्न में देखे गये पदार्थ मिथ्या होते हैं, जबकि समाधिस्थिति में अनुभूत बातें सत्य होती हैं तथा उनके द्वारा समाधि के उपरांत भी वास्तविक लाभ होते हैं।

आनंदमय कोश की साधना का स्वरूप ईश्वर और जीव की मिलन अवस्था है। साधारणतया हम ईश्वर के नाम भर से परिचित हैं उसका नाम जब-तब लेते भी हैं और भजन-पूजन का उपक्रम भी चलाते हैं, पर यह प्रयत्न होता ही नहीं कि ईश्वर को अपने में और अपने को ईश्वर में समाहित करने का प्रयत्न करें। इस समन्वय का कितना सुखद परिणाम हो सकता है, इसकी कभी कल्पना भी तो नहीं आती। आमतौर से ईश्वर एक ऐसा व्यक्ति माना जाता है जो थोड़े-से स्तवन-पूजन से प्रसन्न किया जा सकता है और जिससे तुरंत-फुर्त मनोवांछित वरदान मिल सकते हैं। इसी प्रलोभन में पूजा-उपचार की सारी विडंबनाएँ चलती हैं। ऐसे भगवत् भक्त कहाँ हैं, जो अपने ऊपर ईश्वरीय अनुशासन की स्थापना करते हैं। अपना समग्र समर्पण उसके चरणों में प्रस्तुत करते हैं।

वस्तुतः भक्ति का यही स्वरूप है। यह जहाँ भी अपने वास्तविक स्वरूप में होगी, वहाँ निश्चित रूप से अमृत की वर्षा हो रही होगी। स्वर्गीय परिस्थितियाँ बनी होंगी। उल्लास बिखरा पड़ा होगा, संतोष की शांति रह रही होगी।

ईश्वर व्यक्ति नहीं, शक्ति है। उसे मनुष्यों की तरह मनुहार—उपहार के सहारे प्रसन्न नहीं किया जा सकता। बिजली का समुचित लाभ उठाने के लिए उसके उपयोग की मर्यादाओं को अपनाना पड़ता है। ईश्वर की प्रसन्नता इन तथ्यों पर अवलंबित है जिन्हें उत्कृष्टता के नाम से जाना जाता है। जिसे भावना क्षेत्र में आस्तिकता, चिंतन क्षेत्र में आध्यात्मिकता और कर्मक्षेत्र में धार्मिकता के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।

उपासना का स्वरूप है—समन्वय। भक्ति का चरम लक्ष्य है—समन्वय—एकीकरण—समर्पण। द्वैत को मिटाकर अद्वैत की स्थापना। यह नाले का नदी में समर्पण हुआ। इसे कठपुतली का बाजीगर की उँगलियों के साथ गठ-बंधन कहा जा सकता है। इसे पत्नी का पति को वरण समझा जा सकता है—अनुशासन की स्थापना यही है। अपनी स्वतंत्र इच्छा आकांक्षाएँ समाप्त करके ईश्वरीय अनुशासन को अपने ऊपर स्थापित कर लेना—समर्पण यही है। इसी आत्म-समर्पण की गीता में भगवान् ने भक्त से माँग की है। ईंधन अपने को अग्नि में डालकर अग्निमय हो जाता है। पानी दूध में मिलकर एक रूप बन जाता है। ईश्वर को मनोकामना पूर्ति का 'दूध' नहीं बनाया जाना चाहिए, वरन् उसकी गरिमा में अपने आपको आत्मसात् कर देना चाहिए। इसी स्थिति को ब्रह्म निर्वाण—ईश्वर दर्शन या भगवत् प्राप्ति कहा गया है। यही ब्रह्म-विद्या की अद्वैत साधना है। इसी आधार पर नर को नारायण—पुरुष को पुरुषोत्तम—जीव को ब्रह्म—आत्मा को परमात्मा बनने का अवसर मिलता है।

प्रेम में आकर्षण है—चुंबकत्व है। प्रेम की समीपता सुहाती है, उसी के लिए अधीरता रहती है। ईश्वर भक्ति का भगवत् प्रेम का स्वरूप यही है कि बीच की दूरी को समाप्त किया जाय। दोनों के

बीच गहन समस्वरता दिखाई दे। इस स्थिति में या तो ईश्वर को जीव की इच्छानुसार काम करना पड़ेगा या जीव को ईश्वर का अनुवर्ती बनना पड़ेगा। स्पष्ट है कि नदी नाले में नहीं मिल सकती, उसकी गहराई, चौड़ाई इतनी नहीं है कि जिसमें नदी समा सके। नाले का ही नदी में मिलना संभव है। जीव की इच्छानुवर्ती ईश्वर नहीं हो सकता। यह भ्रांति छोड़ देनी चाहिए। भक्त को ही भगवान् का अनुवर्ती होना चाहिए। यह कार्य भौतिक महत्त्वाकांक्षाओं को समाप्त करके ईश्वर के अनुवर्ती बनने से ही संभव होता है। श्रद्धा और भक्ति का स्वरूप यही है। इसी आधार पर ईश्वर प्राप्ति का आनंद लिया जा सकता है।

ईश्वर प्रेम सीमाबद्ध नहीं रह सकता। हिमालय के हृदय से निकली हुई गंगा कहीं अवरुद्ध नहीं बैठी रहती, वरन् सूखे भूखंडों और प्यासे प्राणियों की प्यास बुझाती हुई अपनी क्षुद्रता को समुद्र की विशालता में समर्पित करती है। भक्ति का अर्थ है—प्रेम। प्रेम संवेदना की प्रतिक्रिया है—आत्मीयता, करुणा, उदारता, सेवा, सद्भावना। यह श्रेष्ठ संवेदनाएँ कल्पना और भावना क्षेत्र में आगे बढ़कर जब व्यवहार बनकर विकसित होती हैं, तो उसका स्वरूप आत्म-निर्माण और लोक-निर्माण के विविध क्रिया प्रयोजनों में ही परिलक्षित होता है। अपने को और दूसरों को ईश्वर की शरण में ले जाने की—श्रद्धा और शक्ति का अवलंबन, आश्रय दिलाने की आकांक्षा ही प्रबल रहती है। निरंतर इसी दिशा में सोचा जाता है और ऐसे ही कृत्य करने का ताना-बाना बुना जाता है।

यही है वह स्थिति जिसे आनंदमय कोश की जाग्रति कह सकते हैं। पंचकोशी गायत्री उपासना की यही सर्वोच्च स्थिति है। इसमें निरंतर ईश्वर दर्शन की अनुभूति होती है। भगवान् सूक्ष्म है, उसका साक्षात्कार भावानुभूति के रूप में ही होता है। आँखों में खिलौने की तरह ईश्वर को देखने की इच्छा करना बाल-बुद्धि के अतिरिक्त और कुछ नहीं। जब हवा, सर्दी, मैत्री, क्रोध, सुख, दुःख जैसे प्रत्यक्ष आँख से नहीं देखे जा सकते, तो ईश्वर जैसे अचित्य, अप्रमेय को इन चर्म-चक्षुओं से देखा जा सकता कैसे संभव हो

सकता है। जिन्हें ऐसे दृश्य दिखते भी हैं, वे उनकी ध्यान चेतना की, प्रगाढ़ता का परिचय मात्र देते हैं। उन्हें दिवा स्वप्न के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता। ईश्वर दर्शन तो अंतःकरण में दिव्यता की झँकी करने के रूप में ही होते हैं। उसके लिए श्रद्धा और भक्ति के दो पैरों के सहारे लंबी यात्रा पूरी करनी पड़ती है।

आनंदमय कोश—श्रद्धा और भक्ति का उद्गम केंद्र है। वहीं ईश्वर मिलन की अनुभूति होती है। अस्तु, ईश्वर मिलन का लक्ष्य पूरा करने के लिए गायत्री की उच्चस्तरीय पंचकोशी साधना की विधि-व्यवस्था बनी है। भावनात्मक क्षेत्र में इस दिव्य मिलन की प्रतिक्रिया आनंद और उल्लास के रूप में दृष्टिगोचर होती है। संसार के श्रेष्ठ-देवपक्ष को देखते हुए प्रसन्न होना—आनंद है, और निकृष्ट—दैत्यपक्ष को निरस्त करने के लिए उमगते हुए शौर्य, साहस का नाम है—उल्लास। धर्म की स्थापना और अधर्म के नाश के लिए ईश्वर का अवतार होने की प्रतिज्ञा को साधक अपने ही भीतर पूरी होते देखता है। उसे लगता है कि भगवान् का अवतार आनंद और उल्लास के—श्रद्धा और भक्ति के रूप में अपने ही भीतर हो रहा है। आनंदमय कोश का यही भाव पक्ष है।



पाँच कोशों की साधना—पंचमुखी गायत्री की सिद्धि

गायत्री के पाँच मुखों वाले चित्रों को उच्चस्तरीय साधना का संकेत, मार्गदर्शन कहना चाहिए। बालकों का आरंभिक शिक्षण एक मात्र वर्णमाला से किया जाता है, इस स्थिति में अनेक विषयों में उसका ध्यान बटाना उचित नहीं माना जाता है। बच्चे को केवल वर्णमाला का ही अभ्यास कराते हैं। सदबुद्धि के रूप में, मानवता के रूप में, मातृ भावना परिष्कृत करने के रूप में एकमुखी गायत्री का चित्रण है। यह सार्वजनीन सर्वसुलभ एवं सर्वोपयोगी है। एक मुख और दो भुजाओं वाले चित्रों में गायत्री माता के एक हाथ में कमंडल और दूसरे में पुस्तक है। इसका तात्पर्य इस महाशक्ति को मानवता की उत्कृष्ट आध्यात्मिकता की प्रतिमा बनाकर उसे मानवी आराध्या के रूप में प्रस्तुत करना है। इस उपासना के दो आधार हैं, ज्ञान और कर्म। पुस्तक से ज्ञान का और कमंडल-जल से कर्म का उद्बोधन कराया गया है। यही वेदमाता है, इसी को विश्वमाता की संज्ञा दी गई है। सार्वजनीय और सर्वप्रथम इसी उपास्य को मान्यता दी गई है।

साधना की ऊँची स्थिति में पहुँचने पर ऊँची कक्षाओं के विद्यार्थियों की तरह उपासना पद्धति में भी कई विषय सम्मिलित कर दिये जाते हैं। भाषा, गणित, भूगोल, इतिहास और विज्ञान ये पाँचों विषय ऊँची कक्षाओं में सम्मिलित रहते हैं। साधना क्षेत्र में भी वह वजन बढ़ता है। सामान्य-से-असामान्य स्तर तक पहुँचे हुए साधकों को पाँच गुना अधिक परिश्रम करना पड़ता है, उसे पाँच कोशीय उपासना कहते हैं। इसी का चित्रण गायत्री के पाँच मुखों के रूप में किया गया।

किसी मनुष्य या देवता के पाँच मुख वस्तुतः होते नहीं हैं। यदि किसी के होंगे तो उसकी विचित्र स्थिति बन जायेगी। सोने, खाने, बोलने में भारी असुविधा उत्पन्न होगी। रावण के दस सिर माने जाते हैं। इस अलंकार का तात्पर्य इतना ही है कि उसका मस्तिष्क दस विद्वानों की सम्मिलित शक्ति जितना विकसित था। इन दस सिरों में एक सिर गधे का भी था। यदि वस्तुतः वैसा रहा होता, तो गधा जो खाता है वही उसे खिलाना पड़ता और रावण के मुख से गधे की आवाज भी सुनने को मिलती। पर वस्तुतः वैसा कुछ था नहीं, वह भी अन्य मनुष्यों की तरह एक मुख और दो हाथ का व्यक्ति था। दैत्य आकार में नहीं, प्रकार में बड़े होते हैं। नैपोलियन, सिकंदर, हिटलर आदि को अपने युग का दैत्य कह सकते हैं। अलंकार रूप में इनके चित्रण भी उनके कार्य विस्तार के अनुरूप किये जा सकते हैं। इतने पर भी उनका शरीर सामान्य मनुष्यों जितना ही माना जायेगा। गायत्री के पाँच मुखों के आलंकारिक चित्रण में इतना ही संकेत है कि इसकी उच्चस्तरीय उपासना में पाँच कोशों के जागरण-अनावरण की साधना का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

पाँच मुख और दस भुजा वाली प्रतिमा में कई संकेत हैं। दस भुजाएँ, दस इंद्रियों की सूक्ष्म शक्ति का संकेत करती है और बताती है कि उनकी संग्रहीत एवं दिव्य सामर्थ्य गायत्री माता की समर्थ भुजाओं के समतुल्य है। दसों दिशाओं में उसकी व्यापकता भरी हुई है। दस दिक्पाल—दस दिग्गज पृथ्वी का संरक्षण करते माने गये हैं। गायत्री की दस भुजाएँ ही दस दिक्पाल हैं। उनमें बताए हुए विविध आयुधों से यह पता चलता है कि वह सामर्थ्य कितने प्रकार की धाराएँ प्रवाहित करती एवं कितने क्षेत्रों को प्रभावित करती हैं।

उच्चस्तरीय साधना में पंचमुखी गायत्री प्रतिमा में पंचकोशी गायत्री उपासना की आवश्यकता का संकेत है। यह पाँच कोश

अंतर्जगत् के पाँच देव, पाँच प्राण, पाँच महान् सद्गुण, पंचाग्नि, पंचतत्त्व, आत्मसत्ता के पाँच कलेवर आदि कहे जाते हैं। पंच देवों की साधना से उन्हें जाग्रत् सिद्ध कर लेने से जीवन में अनेकानेक संपत्तियों और विभूतियों के अवतरण का रहस्योद्घाटन किया गया है। पाँच प्राणों को चेतना की पाँच धाराएँ, चिंतन की प्रखरताएँ कहा गया है। चेतना की उत्कृष्टता इन्हीं के आधार पर बढ़ती और प्रचंड होती है। प्राण विद्या भी गायत्री विद्या का ही एक अंग है। गायत्री शब्द का अर्थ भी गय = प्राण + त्री = त्राता। अर्थात् प्राण-शक्ति का परित्राण करने वाली दिव्य-क्षमता के रूप में किया गया है। कठोपनिषद् में पंचाग्नि विद्या के रूप में इस प्राण-तत्त्व को इन्हीं पाँच धाराओं के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

गायत्री के पाँच मुखों, पंचकोशों के रूप में उन पाँच तत्त्वों की प्रखरता का वर्णन है, जिनसे यह समस्त विश्व और मानव शरीर बना है। स्थूल रूप में ये पाँच तत्त्व पैरों तले रौंदी जाने वाली मिट्टी, कपड़े धोने के लिए काम आने वाले पानी, चूल्हे में जलने वाली, आग, पोला आकाश और उसमें मारी-मारी फिरने वाली हवा के रूप में देखे जाते हैं। पर यदि उनकी सूक्ष्म क्षमता पर गहराई से दृष्टि डाली जाए, तो पता चलेगा कि इन तत्त्वों के नगण्य-से परमाणु तक कितनी अद्भुत शक्ति अपने में धारण किये बैठे हैं। उनकी रासायनिक एवं ऊर्जागत क्षमता कितनी महान् है। पंच तत्त्वों से बना यह स्थूल जगत् और उनकी तन्मात्राओं से बना सूक्ष्म जगत् कितना अद्भुत, कितना रहस्यमय है, यह समझने का प्रयत्न किया जाता है, तो बुद्धि थककर उसे विराट् ब्रह्म की साकार प्रतिमा मानकर ही संतोष करती है। इन पाँच तत्त्वों के अद्भुत रहस्यों का संकेत गायत्री के पाँच मुखों में बताया गया है और समझाया गया है कि यदि इनका ठीक प्रकार उपयोग, परिष्कार किया जा सके, तो उनका प्रतिफल प्रत्यक्ष पाँच

देवों की उपासना जैसा हो सकता है। पृथ्वी, अग्नि, वरुण, मरुत, अनंत—इन पाँच देवताओं को पौराणिक कथा-प्रसंगों में उच्चस्तरीय क्षमतासंपन्न बताया गया है। कुंती ने इन्हीं पाँच देवताओं की आराधना करके पाँच देवोपम पुत्ररत्न पाये थे। पंचमुखी, पंचकोशी उच्चस्तरीय गायत्री उपासना के तत्त्वदर्शन की—तत्त्व साधना की गरिमा का संकेत है।

मानवी सत्ता के तीन शरीर और पाँच कोश हैं। तीन शरीरों का वर्गीकरण सर्वसुलभ है। पाँच कोशों के रूप में उसका विभाजन कुछ अधिक गहरा हो जाता है। सिर, धड़, पैर। उसमें तीन प्रकार के पदार्थ भरे हैं, ठोस पतले और वायु रूप। आहार तीन हैं—अन्न, जल, वायु। यह त्रिधा वर्गीकरण सर्वसुलभ है। अब इसी की व्याख्या कुछ और विस्तार से करनी हो, तो शरीर को पाँच प्रमुख अवयवों में बाँटना पड़ेगा। मस्तिष्क, हृदय, जिगर, आमाशय, गुर्दे। शरीर में भरे हुए पदार्थों को तीन नहीं, पाँच भागों में विभाजित करने पड़ेंगे रक्त, मांस, अस्थि, त्वचा, रोम।

आहार को दाल, साग, रोटी में नहीं, वरन् हाइड्रोकार्बोनेट-प्रोटीन, चिकनाई, सब्जी आदि में विभक्त करना होगा। यदि और भी गहराई से व्याख्या-विवेचना करनी हो, फिर न तीन से काम चलेगा और पाँच से फिर उसके और भी अनेकानेक विभाजन होते चले जायेंगे। प्राथमिक कक्षाओं में विज्ञान एक विषय है, पीछे उसकी शाखा-प्रशाखाएँ—तीन-पाँच ही नहीं, अनेक भागों में विभक्त होती चली जाती हैं। तीन शरीर और पाँच कोश, यह एक ही मानवी अस्तित्व के पर्यवेक्षण विभाजन की शैलियाँ हैं। तैय्य लोग, वात, पित्त, कफ के आधार पर—हकीम, लोबी, वादी, खाकी के आधार पर रोगों का निदान करते हैं। क्रोमोपैथी में लाल, पीला, नीला रंग घटने-बढ़ने से रोगों की उत्पत्ति मानी जाती है और तदनु रूप चिकित्सा की जाती है। डाक्टरों के निदान में रक्त, मल, मूत्र थूक का एकसरे जैसे परीक्षण

आवश्यक समझे जाते हैं। यह प्रयोग एवं परीक्षण की शैलियाँ भर हैं। उससे रोग के मूल कारण और उसके निवारण के उद्देश्य पर कोई अंतर नहीं पड़ता है। होम्योपैथ, आयुर्वेद, तिब्बी, एलोपैथी, नेचरोपैथी आदि का निदान तथा चिकित्सा पद्धतियों में अंतर रहते हुए भी उनके बीच कोई विग्रह या झंझट नहीं है। सुविधानुसार इनमें से किसी का भी प्रयोग करके रोग-निवृत्ति का उद्देश्य प्राप्त किया जा सकता है। गायत्री उपासना के दोनों ही साधना विधान अपने-अपने स्थान पर उपयोगी हैं। त्रिपदा साधना में तीन शरीरों की—तीन ग्रंथियों की व्यवस्था है। पंचमुखी साधना में पाँच कोशों का अनावरण करना पड़ता है। इनमें से किसके लिए कौन पद्धति अधिक सरल एवं उपयोगी पड़ेगी, यह अपनी मनःस्थिति के आधार पर किसी अनुभवी के परामर्श से निश्चय करना चाहिए। यहाँ पंचकोशी उपासना की चर्चा ही समीचीन है।

कोश कहते हैं खजाने या आवरण को। मानवी सत्ता में पाँच अत्यंत बहुमूल्य रत्न भंडार छिपे पड़े हैं। इन्हें खोज निकालने से जो लाभ मिलते हैं उन्हें प्रसिद्ध पंच देवताओं के अनुग्रह बरसने के समतुल्य माना गया है। भवानी, गणेश, ब्रह्मा विष्णु महेश—ये पाँच देवता माने गये हैं। ये देव शक्तियाँ ब्रह्मांडव्यापी भी हैं और काय सत्ता में भी उनके केंद्र संस्थान विद्यमान हैं। भीतर और बाहर दोनों ही जगह उसका अस्तित्व छोटे और बड़े आकार में विद्यमान है। कोश विज्ञान के अनुसार जीवन सत्ता का विभाजन पाँच वर्गों में हुआ है। अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश और आनंदमय कोश। ये सामान्यतया मूर्च्छित, प्रसुप्त स्थिति में पड़े रहते हैं। बीज के भीतर भी वृक्ष बनने की क्षमता तो आरंभ से ही विद्यमान रहती है, पर वह प्रकट तभी होती है जब उसे विधिवत् बोया-उगाया जाता है। पाँच कोश भी तिजोरी के भीतर पाँच तालों के भीतर संपत्ति की तरह समझे जा सकते हैं। ऊपरी परतों की

अपेक्षा नीचे की परतें अधिक बहुमूल्य हैं। सामान्य बुद्धि भी यही कहती है कि सस्ती वस्तुएँ बाहर कम सुरक्षित जगह पर रख दी जाती हैं। मूल्य की दृष्टि से सुरक्षा का प्रबंध भी किया जाता है। सस्ती वस्तुएँ बरामदे में, कीमती कमरे में, उससे महँगी संदूक में और फिर सबसे अधिक कीमत वाली तिजोरी के भी भीतर रहने वाले छोटे लॉकर में बंद की जाती हैं। परमात्मा ने भी यही किया है। हाथ-पैर निकाल दिये हैं, हृदय फेफड़े, मस्तिष्क आदि को मजबूत बक्सों में बंद करके रखा है। पाँच कोशों की स्थिति भी वही है। वे स्तर के अनुरूप एक के बाद एक ऊँचे होते चले गये हैं। तदनुरूप उनकी शक्तियाँ एवं सिद्धियाँ भी अधिक उच्चस्तरीय तथा अधिक महत्त्वपूर्ण होती चली गई हैं।

मानवी सत्ता जड़ शरीर और चेतन आत्मा के समन्वय से बनी है। इन दोनों खंडों के पाँच-पाँच भाग हैं। शरीर पदार्थ से निर्मित है। पदार्थ को तत्त्व कहते हैं। तत्त्व पाँच हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश। जीवन चेतना को प्राण कहते हैं। प्राण के पाँच भाग हैं। प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान। पाँच तत्त्व और पाँच प्राणों के समन्वय से पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ बनी हैं। पदार्थों की इंद्रियों द्वारा जो अनुभूति होती है, उन्हें तन्मात्राएँ कहते हैं। तन्मात्राएँ पाँच हैं—शब्द, रूप, रस, गंध स्पर्श। इन्हीं का विस्तार कायकलेवर में दृष्टिगोचर होता है। इसी को प्रपंच कहते हैं। प्रपंच में फँसा हुआ प्राणी बद्ध और उससे छूटा हुआ मुक्त कहलाता है।

पंच कोशों को पंच तत्त्वों और पंच प्राणों के समन्वय से बनी हुई ऐसी अदृश्य सत्ता कह सकते हैं, जो शरीर के आकार-प्रकार की तो होती है, पर उसमें स्थूल का अंश बहुत स्वल्प और सूक्ष्मता की मात्रा अत्यधिक रहती है। इन शरीरों का मोटा अनुमान प्रेत शरीर या छाया पुरुष से लगाया जा सकता है। 'छाया पुरुष' जीवित स्थिति में ही शरीर के साथ-साथ ही

रहता है। तांत्रिक विधि से उसे सिद्ध कर लेने पर वह अदृश्य, साथी, सेवक का काम देता है। शरीर में ठोस पदार्थ अधिक होने से वह भारी रहता है और दौड़-धूप नहीं कर सकता। छाया पुरुष हलका और अदृश्य होने के साथ-साथ ऐसी विशेषताओं से युक्त भी होता है, जो बहुत प्रयत्न करने पर किसी प्रकार पाई-जगाई जाती है। छाया पुरुष परिपक्व सूक्ष्म शरीर भी कहा जा सकता है।

अंग्रेजी में इसे 'ईथरीक डबल' कहते हैं। पंचकोश विज्ञान की दृष्टि से इसे अन्नमय कोश कहा जायेगा। एक दूसरा उदाहरण प्रेत का है मरने के बाद काया तो नष्ट हो जाती है, पर उसकी प्राणवान् छाया पीछे भी बनी रहती है। स्वर्ग-नरक जैसे सुख-दुःख भुगतने की अनुभूति उसे होती है। मरने से पूर्व के मित्र-शत्रुओं के प्रति राग-द्वेष उसे बना रहता है। स्वभाव-संस्कार भी वैसे ही बने रहते हैं। उत्तेजित, अशांत प्रेत उपद्रव करते हैं, किंतु सौम्य स्वभाव वाले शांतिपूर्वक विश्राम करते हैं। यह स्थिति भी अन्नमय कोश की ही है। छाया पुरुष और प्रेतात्मा के अस्तित्व का परिचय प्रायः मिलता रहता है।

आगे के चार शरीर अन्नमय कोश की तुलना में उसी अनुपात में सूक्ष्म—सूक्ष्मतर—सूक्ष्मतम होते चले गये हैं, जिन्हें स्थूल शरीर की तुलना में अदृश्य प्रेत शरीर कह सकते हैं। इन अधिक सूक्ष्म शरीरों को क्रमशः अगला कोश कहा जायेगा। अन्नमय कोश को अंग्रेजी में 'फिजीकिल बाडी' कहते हैं। 'बाडी' का अर्थ मोटे अर्थ में प्रत्यक्ष शरीर ही समझा जाता है, पर अध्यात्म की परिभाषाएँ सूक्ष्म शरीर से आरंभ होती हैं। इसलिए इसे वस्तुतः वह सूक्ष्म शरीर ही समझा जाना चाहिए, जो स्वप्न, प्राण, विनियोग आदि में काम आता है। मन-मस्तिष्क के रूप में अपना अस्तित्व बनाए हुए है और जीवनयापन की हर प्रक्रिया में प्रायः साथ-साथ ही रहता है। उससे आगे के प्राणमय कोश की

‘ईथरिक बॉडी’ मनोमय कोश को ‘एस्ट्रल बॉडी’, विज्ञानमय कोश को ‘कास्मिक बाडी’ और आनंदमय कोश को ‘कॉजल बॉडी’ कहते हैं। इन पाँचों को मिलाकर एक सर्व मानवी सत्ता बनती है। इनमें एक के बाद दूसरे की महत्ता तथा समर्थता अपेक्षाकृत अधिक होती चली गई है। साधना करने से इनमें से प्रत्येक में एक से एक अधिक ऊँचे स्तर की शक्तियाँ-सिद्धियाँ मिलती चली जाती हैं। इसी आधार पर उन परतों को शरीरस्थ पाँच देवताओं की संज्ञा दी गई है और कहा गया है कि इन्हें जीवित कर लेने वाला, पाँच देवताओं के साथ रहने वाला अथवा उन्हें साथ रखने वालों की स्थिति में पहुँच जाता है।

पूजा में पंचामृत का, पंचोपचार का, पंच गव्य का, प्रसंग आता है। तपस्वी पंचाग्नि तपते हैं। पंचकेश रखाते हैं, रत्नों में पाँच प्रमुख हैं, उन्हें पंच रत्न कहते हैं। वस्त्र-दान में पाँच कपड़े देने की व्यवस्था बनाई जाती है। पंचायत शब्द इसीलिए बना है कि उसमें पाँच पंचों का प्रचलन था। राम पंचायत के चित्र सभी ने देखे हैं। कई देवताओं के भी गायत्री की तरह ही पाँच मुख हैं। पाँच मुख के शंकर जी तथा पाँच मुख वाले हनुमान जी की मूर्तियाँ अनेक मंदिरों में प्रतिष्ठापित हैं। आयुर्वेद में कई जड़ी-बूटियों के पंचांग काम में आते हैं। ग्रह-गणित बताने वाले सभी पंडितों के पास पंचांग रहता है। वेदांत साधना में पंचीकरण विद्या का विस्तारपूर्वक वर्णन हुआ है इस सबकी समता गायत्री की पंचमुखी आकृति और पंच कोशों की साधना से की जा सकती है।

जीवन-प्रक्रिया के अंतर्गत पंचवर्गों के विभाजन अनेक दृष्टियों से आते हैं। शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, पारिवारिक एवं सामाजिक समस्याएँ ही हर मनुष्य के भौतिक जीवन में उपस्थित रहती हैं। उन्हीं के समाधान के लिए निरंतर दौड़-धूप और माथा-पच्ची होती रहती है।

व्यावहारिक सद्गुणों में पाँच ही प्रमुख हैं—(१) तत्परता (श्रम निष्ठा) (२) स्वच्छता (व्यवस्था) (३) मितव्ययता (सादगी) (४) सद्भाव (शिष्टाचार) (५) आत्मीयता (सहकार)। इन्हीं पाँच को पारिवारिक पंचशील कहते हैं। प्रगतिशील जीवनक्रम और पारिवारिक विकास प्रायः इन्हीं पाँचों सिद्धांतों पर निर्भर रहता है।

लगभग इन्हीं सद्गुणों को वैयक्तिक जीवन की प्रखरता का आधार माना गया है। परिष्कृत अन्नमय कोश का लक्षण है, श्रम और संयम का अभ्यास, प्राणमय कोश का सत्साहस और सत्संकल्प से, मनोमय कोश का संतुलन विवेक से—विज्ञानमय कोश को सहृदयता, सज्जनता से, आनंदमय कोश का श्रद्धा और भक्ति से, प्रमाण-परिचय मिलता है। ये विभूतियाँ जितनी विकसित हों समझा जाना चाहिए कि वह शरीर उसी अनुपात से विकसित हो चला। स्पष्ट है कि आंतरिक विभूतियों के ही मूल्य पर बाह्य जीवन की सफलताओं एवं संपत्तियों का उपलब्ध होना निर्भर है।

पाँच कोशों का जागरण पाँच अदृश्य शक्ति-संस्थानों के उद्गम केंद्रों की निष्क्रियता को सक्रियता में बदल देता है। जमीन के नीचे कितनी ही जल धाराएँ ऐसी बहती हैं, जो भूतल पर बहने वाली नदियों की तुलना में अधिक बड़ी, अधिक तेजी से जल बहाने वाली होती हैं। चूँकि वे नीचे दबी हुई हैं, इसलिए उनका लाभ धरती के निवासियों को मिल नहीं पाता। जो ऊपर बहती हैं, वे काम में आती हैं। राजस्थान में यह प्रयत्न चल रहे हैं कि उस प्रदेश में नीचे बहने वाली नदियों का पानी ऊपर लाया जाय और उससे वहाँ के मरुस्थलों को हरा-भरा बनाया जाय। ये प्रयत्न सफल हो गये, तो वहाँ के सूखे और पिछड़े क्षेत्र को हरा-भरा और सुसंपन्न बनने का अवसर मिल जायेगा। मानवी काया में अंतर्निहित सूक्ष्म शक्ति-स्रोत इसी प्रकार के हैं

यदि उनकी प्रसुप्ति हटाई जा सके और जाग्रति का अवसर दिया जा सके, तो आज की स्थिति में कल भारी अंतर दृष्टिगोचर होगा। पिछड़ेपन को प्रगतिशील बनने में तनिक भी देर न लगेगी।

साधारणतः, कर्मेन्द्रियों के श्रम और ज्ञानेन्द्रियों के अनुभव का लाभ उठाकर ही मनुष्य की समस्त गतिविधियाँ चलती हैं। इन्हीं के सहारे उसे ऊँचा उठने और आगे बढ़ने का अवसर मिलता है। उपार्जन और उपयोग इन्हीं उपकरणों के सहारे होता है। ये सीमित साधन हैं, इससे आगे के असीम साधन और हैं, जिन्हें अदृश्य शक्ति-स्रोत कहा गया है। पंच कोश यही हैं। इनसे बने शरीर यदि ठीक तरह काम करने लगे, तो समझना चाहिए कि एक व्यक्ति पाँच गुना सामर्थ्यवान् बन गया। एक को चार साथी मिल जाने से पाँच भाइयों के साथ मिलकर काम करने जैसी स्थिति बन गई। पाँचों पंच मिलकर जो निर्णय करेंगे, वह फैसला मान्य ही होगा। पाँच पांडवों ने एक सूत्र में बँधकर स्वल्प साधनों से महाभारत में विजय पाई थी। किसी को सफलता मिलती चली जाए, तो कहते हैं कि "पाँचों उँगलियाँ घी में हैं।" महर्षि पंच शिख ने अध्यात्म तत्त्वज्ञान के जिन रहस्यों का प्रकटीकरण किया है, वे पंच कोशों के आवरण से उपलब्ध होने वाले ज्ञान-विज्ञान का ही संकेत करते हैं। ये पाँच अग्नि शिखाएँ—पाँच ज्वालाएँ—पाँच कोशों में सन्निहित दिव्य क्षमताएँ ही समझी जा सकती हैं।

पाँच कोशों के पाँच देवताओं का पृथक् से भी वर्णन मिलता है। अन्नमय कोश का सूर्य—प्राणमय का यम—मनोमय का इंद्र—विज्ञानमय का पवन और आनंदमय कोश का देवता वरुण माना गया है। कुंती ने इन्हीं पाँचों देवताओं की साधना करके पाँच पांडवों को जन्म दिया था। वे देवपुत्र कहलाते थे।

इन पाँच कोशों एवं देवताओं की पाँच सिद्धियाँ हैं—अन्नमय कोश की सिद्धि से निरोगता, दीर्घ जीवन एवं चिर यौवन का लाभ मिलता है। प्राणमय कोश से साहस, शौर्य पराक्रम प्रभाव प्रतिभा जैसी विशेषताएँ उभरती हैं। प्राण विद्युत् की विशेषता से आकर्षक चुंबक व्यक्तित्व में बढ़ता जाता है और प्रभाव क्षेत्र पर अधिकार बढ़ता जाता है। मनोमय कोश की जाग्रति से विवेकशीलता, दूरदर्शिता, बुद्धिमत्ता बढ़ती है और उतार-चढ़ावों में धैर्य-संतुलन बना रहता है। विज्ञानमय कोश से सज्जनता का, उदार सहृदयता का विकास होता है और देवत्व की उपयुक्त विशेषताएँ उभरती हैं। अतीन्द्रिय ज्ञान अपरोक्षानुभूति, दिव्य दृष्टि जैसी उपलब्धियाँ विज्ञानमय कोश की हैं। आनंदमय कोश के विकास से चिंतन तथा कर्तृत्व दोनों ही इस स्तर के बन जाते हैं कि हर घड़ी आनंद छाया रहे, सकंटों का सामना ही न करना पड़े। ईश्वर दर्शन, आत्म-साक्षात्कार, स्वर्ग-मुक्ति जैसी महान् उपलब्धियाँ आनंदमय कोश की ही देन है।

जागरण एवं अनावरण शब्द पंच कोशों के परिष्कार की साधना में प्रयुक्त होते हैं। इन प्रसुप्त संस्थानों को जाग्रत्, सक्रिय सक्षम बनाकर चमत्कार दिखा सकने की स्थिति तक पहुँचा देना जागरण है। अनावरण का तात्पर्य है, आवरणों का हटा दिया जाना। किसी जलते बल्ब के ऊपर कई कपड़े ढक दिये जायें, तो उसमें प्रकाश तनिक भी दृष्टिगोचर न होगा। इन आवरणों का एक-एक परत उठाने लगे, तो प्रकाश का आभास क्रमशः बढ़ता जायेगा। जब सब पर्दे हट जायेंगे, तो बल्ब अपने पूरे प्रकाश के साथ दिखाई पड़ने लगेगा। आत्मा के ऊपर इन पाँच शरीरों के—पाँच आवरण पड़े हुए हैं, उन्हीं को भव-बंधन कहते हैं। इनके हट जाने या उठ जाने पर ईश्वर दर्शन आत्म-साक्षात्कार, एवं बंधन-मुक्ति का लाभ मिलता है।

गायत्री माता की दस भुजायें

गायत्री महाशक्ति के चित्रों में चित्रित पाँच मुखों का तत्त्व दर्शन उपरोक्त पंक्तियों में समझा जा सकता है। अब दस भुजाओं के रहस्य पर प्रकाश डाला जाता है।

मानव जीवन के दो पहलू हैं (१) आत्मिक, (२) भौतिक। यह दोनों पक्ष ही गायत्री के दो पार्श्व हैं, दोनों में पाँच-पाँच भुजाएँ हैं। अर्थात् पाँच-पाँच शक्तियाँ, सामर्थ्य और विभूतियाँ। आध्यात्मिक दक्षिण पार्श्व की पाँच भुजाएँ हैं—(१) आत्म-ज्ञान, (२) आत्म-दर्शन, (३) आत्म-अनुभव, (४) आत्म-लाभ और (५) आत्म-कल्याण। भौतिक-वाम पार्श्व की पाँच भुजाएँ हैं—(१) स्वास्थ्य, (२) संपत्ति, (३) विद्या, (४) कौशल, (५) मैत्री। गायत्री के सच्चे उपासक को यह दस सिद्धियाँ दस विभूतियाँ निश्चित रूप से मिलती हैं। इन दसों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

आत्म-ज्ञान का अर्थ है, अपने को जान लेना, शरीर और आत्मा की भिन्नता को भली प्रकार समझ लेना और शारीरिक लाभों को आत्म-लाभ की तुलना में उतना ही महत्त्व देना, जितना दिया जाना उचित है। आत्म-ज्ञान होने से मनुष्य का 'असंयम' दूर हो जाता है। इंद्रिय भोगों की लोलुपता के कारण लोगों की शारीरिक और मानसिक शक्तियों का अनुचित-अनावश्यक व्यय होता है। जिससे शारीरिक असंयम के कारण वह दुर्बल, रोगी, कुरूप एवं जरा-जीर्ण हो जाता है। आत्म-ज्ञानी इंद्रिय भोगों की उपयोगिता-अनुपयोगिता का निर्णय आत्म-लाभ की दृष्टि से करता है। इसलिये वह स्वभावतः संयमी रहता है और शरीर से संबंध रखने वाले दुःखों से बचा रहता है, दुर्बलता, रोग एवं कुरूपता का कष्ट उसे नहीं भोगना पड़ता। जो कष्ट उसे पूर्व प्रारब्ध कर्मों के अनुसार भोगने होते हैं, वह भी आसानी से भुगत लिए जाते हैं।

‘आत्म-दर्शन’ का तात्पर्य है—अपने स्वरूप का साक्षात्कार करना। साधना द्वारा आत्मा के प्रकाश का जब साक्षात्कार होता है, तब प्रीति, प्रतीति, श्रद्धा, निष्ठा और विश्वास की भावना बढ़ती है। कभी भौतिकवादी, कभी अध्यात्मवादी होने की डाँवाडोल मनोदशा स्थिर हो जाती है और ऐसे गुण, कर्म, स्वभाव प्रकट होने लगते हैं जो एक आत्म दृष्टि वाले मनुष्य के लिए उचित हैं। इस आत्म-दर्शन की द्वितीय भूमिका में पहुँचने पर दूसरों को जानने, समझने और उन्हें प्रभावित करने की सिद्धि मिल जाती है।

जिसे आत्म-दर्शन हुआ, उसकी आत्मिक सूक्ष्मता अधिक व्यापक हो जाती है, वह संसार के सब शरीरों में अपने को समाया हुआ देखता है। जैसे अपने मनोभाव, आचरण, गुण, स्वभाव, विचार और उद्देश्य अपने को मालूम होते हैं, वैसे ही दूसरों के भीतर की सब बातें भी अपने को मालूम हो जाती हैं। साधारण मनुष्य जिस प्रकार अपने शरीर और मन से काम लेने में समर्थ होते हैं, वैसे ही आत्म-दर्शन करने वाला मनुष्य, दूसरों के मन और शरीरों पर अधिकार करके उन्हें प्रभावित कर सकता है।

‘आत्म-अनुभव’ कहते हैं—अपने वास्तविक स्वरूप का क्रियाशील होना, अपने अध्यात्म ज्ञान के आधार पर ही भावना का होना। आमतौर से लोग मन में विचार तो बहुत ऊँचे रखते हैं, पर बाह्य जीवन में अनेक कारणों से उन्हें चरितार्थ नहीं कर पाते। उनका व्यावहारिक जीवन गिरी हुई श्रेणी का होता है किंतु जिन्हें आत्मानुभव होता है, वे भीतर-बाहर से एक होते हैं, उनके विचार और कार्यों में तनिक भी अंतर नहीं होता। जो कार्य, उच्च-जीवन बिताने वाले सामान्यतया लोगों को पर्वत के समान दुर्गम मालूम पड़ते हैं। उन्हें वे एक ठोकर में तोड़ देते हैं। उनका जीवन ऋषि जीवन बन जाता है।

आत्म-अनुभव से सूक्ष्म प्रकृति की गतिविधि मालूम करने की सिद्धि मिलती है। किसका क्या भविष्य बच रहा है ? भूतकाल में

कौन क्या कर रहा था ? किस कार्य में दैवी प्रेरणा क्या है ? क्या उपद्रव उत्पन्न होने वाले हैं ? लोक-लोकांतरों में क्या हो रहा है ? कब, कहाँ, क्या वस्तु उत्पन्न और नष्ट होने वाली है, आदि ऐसी अदृश्य एवं अज्ञात बातें जिन्हें साधारण लोग नहीं जानते, उन्हें आत्मानुभाव की भूमिका में पहुँचा हुआ व्यक्ति भली प्रकार जानता है। आरंभ में उसे ये अनुभव कुछ धुँधले होते हैं, पर जैसे-जैसे उसकी दिव्य दृष्टि निर्मल होती जाती है, सब कुछ चित्रवत् दिखाई देने लगता है।

‘आत्म-लाभ’ का अभिप्राय है—अपने में पूर्ण आत्म तत्त्व की प्रतिष्ठा। जैसे भट्ठी में पड़ा हुआ लोहा तपकर अग्निवर्ण का लाल हो जाता है, वैसे ही इस भूमिका में पहुँचा हुआ सिद्ध पुरुष दैवी तेज पुंज से परिपूर्ण हो जाता है। वह सत् की प्रत्यक्ष मूर्ति होता है, जैसे अँगीठी के निकट बैठने से गर्मी अनुभव होती है, वैसे ही ऐसे महापुरुषों के आस-पास ऐसा सतोगुणी वातावरण छाया रहता है, जिसमें प्रवेश करने वाले साधारण मनुष्य भी शांति अनुभव करते हैं। जैसे वृक्ष की सघन शीतल छाया में, ग्रीष्म की धूप से तपे हुए लोगों को विश्राम मिलता है, उसी प्रकार आत्म-लाभ से लाभान्वित महापुरुष अनेकों को शांति प्रदान करते रहते हैं।

आत्म-लाभ के साथ-साथ आत्मा की, परमात्मा की अनेक दिव्य शक्तियों से संबंध हो जाता है। परमात्मा की एक-एक शक्ति का प्रतीक एक-एक देवता है। यह देवता अनेक सिद्धि-सिद्धियों का अधिपति है। यह देवता जैसे विश्व-ब्रह्मांड में व्यापक है वैसे ही एक छोटा-सा रूप यह पिंड देह है। इस पिंड देह में जो दैवी शक्तियों के गुह्य संस्थान हैं, वे आत्म-लाभ करने वाले साधक के लिए प्रकट एवं प्रत्यक्ष हो जाते हैं और वह उन दैवी शक्तियों से इच्छानुकूल कार्य ले सकता है।

‘आत्म-कल्याण’ का अर्थ है—जीवन मुक्ति, सहज समाधि कैवल्य, अक्षय आनंद, ब्रह्म-निर्वाण, स्थित प्रज्ञावस्था, परमहंस गति,

बनी रहेगी। दरिद्रता का निवास वहाँ हो ही नहीं सकता। जो परिश्रम और सावधानी के साथ उद्योग करेगा, दूसरों से मनुष्यता एवं मधुरता भरा व्यवहार करेगा, उसको अर्थ-उपार्जन के अनेक अवसर स्वतः ही प्राप्त होते रहेंगे। कमाये हुए पैसे को ठीक तरह खर्च करने की बुद्धि आमतौर से लोगों को नहीं होती। अस्तु, अपव्यय के कारण उन्हें दरिद्रता घेरे रहती हैं। सादगी और शालीनता की नीति अपनाकर खर्च करने वाला व्यक्ति न दरिद्र रहेगा न अभावग्रस्त और न ऋणी। जो दुर्गुण मनुष्य के व्यक्तित्व को अस्त-व्यस्त करते हैं, वे ही वस्तुतः दरिद्रता के कारण होते हैं। गायत्री की शिक्षा एवं प्रेरणा साधक को व्यवस्थित बनाने की है। सच्चा साधक उसे हृदयंगम भी करता है, फलस्वरूप उसे दरिद्रता का दुःख नहीं देखना पड़ता।

कई बार अर्थ संकट की चिंता भरी घड़ियों में गायत्री उपासना आश्चर्यजनक प्रकाश उत्पन्न करती है। आय के जो स्रोत अवरुद्ध हो गये थे, वे खुले जाते हैं। मार्ग के अवरोध हटते हैं और ऐसे अवसर उत्पन्न होते हैं, जिनके कारण समृद्धि की संभावनाएँ अनायास ही बढ़ जाती हैं। इस प्रकार के अवसर साधकों को ही आयेदिन मिलते रहते हैं और वे अनुभव करते हैं कि गायत्री माता का अनुग्रह मनुष्य की दरिद्रता एवं विपन्नता को भी दूर करता है।

गायत्री बुद्धि की देवी है। उसके साधक की अभिरुचि स्वभावतः ज्ञान अभिवर्धन में होती है। स्वाध्याय और सत्संग द्वारा प्राप्त वह आत्मिक ज्ञान बढ़ाता है वहाँ सांसारिक स्थिति को समझने के लिए अपनी शिक्षा भी जारी रखता है। अध्ययन तो उसका प्रधान व्यसन होता है। जिसे पढ़ने में रुचि है, वह अपने ज्ञान कोश को धीरे-धीरे संचित करता रहे, तो भी क्रमशः विद्यावान् बनता चला जाता है, विद्या ही संसार का सबसे बड़ा धन है, यह बात उसके मन में बैठ जाती है, तो जिस प्रकार सामान्य लोगों को धन कमाने की धुन रहती है, उसी तरह उसे विद्यावान् बनने की

ईश्वर प्राप्ति। इस पंचम भूमिका में पहुँचा हुआ साधक ब्राह्मी भूत होता है। पंचम भूमि में पहुँची हुई आत्माएँ ईश्वर की मानव प्रतिमूर्ति होती हैं। उन्हें देवदूत, अवतार, पैगंबर, युग-निर्माता, प्रकाश स्तंभ आदि नामों से पुकारते हैं। उन्हें क्या सिद्धि मिलती है ? उसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि कोई चीज ऐसी नहीं, जिसके आनंद के वे स्वामी नहीं होते। ब्रह्मानंद, परमानंद एवं आत्मानंद से बड़ा और कोई सुख इस त्रिगुणात्मक प्रकृति में संभव नहीं, यही सर्वोच्च लाभ आत्म-कल्याण की भूमिका में पहुँचे हुए को प्राप्त हो जाता है।

भौतिक पक्ष की पाँच सिद्धियाँ गायत्री माता की पाँच भुजाएँ भौतिक जीवन की दृष्टि से बहुत महत्त्व की हैं।

गायत्री उपासक का आहार-विहार संयमित रहता है, इसीलिए उसे बीमारियों का कष्ट नहीं भोगना पड़ता। नियमितता, निरालस्यता एवं श्रमशीलता का अभ्यस्त रहने के कारण उसके सारे अवयव क्रियाशील रहते हैं। किसी अंग या इंद्रिय का दुरुपयोग न करने का स्वभाव होने के कारण उन सबकी शक्ति चिरकाल तक स्थिर रहती है। रोग, पीड़ा, अकाल मृत्यु का कारण असंयम ही तो है। आध्यात्मिक दृष्टिकोण अपनाते वाला जब संयम की रीति-नीति अपनावेगा, तो फिर उसके शरीर को कष्टों से ग्रसित होने का अवसर ही न आयेगा। प्रारब्धवश आये, तो भी वह अधिक समय ठहरेगा नहीं।

गायत्री उपासना का अपना विशेष सत्परिणाम भी है। रोगग्रस्त, शरीर पीड़ा से व्यथित, असाध्य और कष्ट-व्यथाओं से ग्रसित व्यक्ति गायत्री उपासना का अवलंबन ग्रहण करने पर अपने रोगों से छुटकारा पाते प्रत्यक्ष देखे जाते हैं।

गायत्री उपासना में जिन सद्गुणों का विकास होता है, उसमें परिश्रमशीलता, तत्परता, सतर्कता, मधुरता, सादगी एवं मितव्ययिता प्रमुख है। ये सद्गुण जहाँ भी होंगे, वहाँ सदा समृद्धि

निरहंकारिता, सज्जनता जैसी विशेषताएँ उत्पन्न होती ही है। ऐसे व्यक्तित्व की खिले हुए सुगंधित कमल पुष्प से तुलना की जा सकती है, जिसके चारों ओर भौरे, मधुमक्खियाँ और तितलियाँ मड़राती हैं, जिसकी दृष्टि उस पर पड़ती है, वही प्रसन्न होता है। जिसको भी उसकी सुगंध मिलती है, वह आकर्षित होता है। सज्जनता संपन्न व्यक्ति को सच्चे मित्रों की कभी कमी नहीं रहती। उसके प्रशंसक, सहायक, सहयोगी एवं मित्र, दिन-दिन बढ़ते ही रहते हैं।

जिसकी प्रतिष्ठा जितनी होगी, जिसके जितने सहयोगी एवं मित्र होंगे, उसकी प्रगति की संभावनाएँ भी उतनी ही बढ़ी-चढ़ी होंगी। ऐसे व्यक्ति जिधर भी चलते हैं, उधर ही उनके लिए पलक-पाँवड़े बिछाये जाते हैं। और आरती उतारी जाती है।

गायत्री उपासना से तात्कालिक लाभ भी अगणित होते हैं। शत्रुओं के घातक आक्रमण की संभावना समाप्त होती है। द्वेष शांत होता है और विध्वंसकारी विरोधियों के हौंसले पस्त हो जाते हैं जो प्रतिकूल थे, वे अनुकूल बनते हैं और जिनका असहयोग था, उनका सहयोग मिलने लगता है। जहाँ उपेक्षा, असहयोग एवं विरोध की संभावना थी, वहाँ अनुकूल वातावरण देखकर कितने ही व्यक्तियों ने गायत्री की अनुपम शक्ति का चमत्कार देखा है।

कहा जा चुका है कि पंचमुखी गायत्री मानवी सत्ता के पाँच कलेवरों, पाँच कोशों की ओर इंगित करती है। जो पंचमुखी गायत्री की आराधना करते हैं, पाँच कोशों का अनावरण करने में सफल हो जाते हैं, वे पाँच समर्थ पुरुषों की भाँति लौकिक और आत्मिक क्षेत्र में सफलताएँ अर्जित करते हैं। पंचमुखी और दशभुजी गायत्री का यही अर्थ है। इस तथ्य को समझकर जो व्यक्ति पाँच कोशों को सिद्ध करने के लिए निरत रहते हैं उन्हें सर्वतोमुखी सफलता करतलगत होती है।

आकांक्षा निरंतर बनी रहती है। फलस्वरूप अध्ययन के मार्ग में जो व्यवधान थे, वे दूर होते रहते हैं। यह परिस्थिति तो उत्पन्न होती ही रहती है, जिसके आधार पर वह ज्ञानवान् और विद्वान् बन सके। गायत्री उपासक अशिक्षित, मूढ़ एवं शिक्षा की उपेक्षा करने वाला हो ही नहीं सकता।

कई बार इस उपासना के फलस्वरूप दुर्बल मस्तिष्क वालों की प्रतिभा भी अप्रत्याशित रूप में प्रखर होती देखी गई। मंदबुद्धि, भुलक्कड़, मूर्ख, अदूरदर्शी, सनकी, जिद्दी, अर्द्ध-विक्षिप्त मस्तिष्क वालों को बुद्धिमान्, दूरदर्शी, तीव्र बुद्धिवान् विवेकवान् बनते देखा गया है। गायत्री उपासना करने वाले छात्रों को परीक्षा में अच्छी सफलता प्राप्त करते देखा गया है।

बात पर ठीक तरह से सोचना, स्थिति को सही रूप से समझना और कार्य को ठीक तरह करना, यह कौशल कहलाता है। कौन गुत्थी, किस स्थिति में, किस प्रकार सुलझ सकती है ? इसका सही तरीके से निर्णय कर सकने की क्षमता का नाम ही चातुर्य है। चतुर और क्रिया-कुशल व्यक्तियों के सामने सफलताएँ हाथ बाँधे खड़ी रहती हैं। विभिन्न दशा में विस्तृत जानकारी, सुलझे हुए विचार और सही अवसर पर सही कदम उठाने की सूझ-बूझ कुशलता के चिह्न हैं। ऐसे कुशल व्यक्ति हर क्षेत्र में आगे रहते हैं और सफलताओं पर सफलता प्राप्त करते हुए आगे बढ़ते चलते हैं।

उलटी तरह सोचने वाले, दीर्घसूत्री और भौंदू बुद्धि कहलाने वाले व्यक्ति, गायत्री उपासना का अवलंबन लेकर—कलाकार, नेता शिल्पी, विजयी, सरस्वती के वरद पुत्र—प्रतिभाशाली एवं यशस्वी होते देखे गये हैं। मस्तिष्क पर दुर्भावों का अनावश्यक दबाव न रहने से व्यक्तित्व में ऐसी प्रखरता आना स्वाभाविक भी है।

सद्बुद्धि की देवी गायत्री—अपने सच्चे उपासक को प्रधानतया सद्गुणों का वरदान प्रदान करती है। उससे नम्रता, सौहार्द, सौजन्य, सेवाभावना, प्रसन्नता, प्रखरता, दयालुता,